पुरुषार्थ के बोलते चित्र

(प्रकाश की ओर ले जानेवाले जीवन-चरित)

हिमांशु श्रीवास्तव

प्राप्ति-स्थान

राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल

मछुआटोली, पटना-४

प्रकाशक :

राष्ट्रीय साहित्य सदन

१७, गुइन रोड, लखनऊ

आवरण-चित्रकार :

कृष्णचंद्र श्रीवास्तव

मूल्य :

तीन रुपए, पच्चीस नए पैसे

प्रथम संस्करण :

१६६०

मुद्रक :

कालिका प्रेस

पटना-४

बड़े भाई - तुल्य
श्रौर श्रनन्य मित्र भी,
कवि, श्रालोचक श्रौर नाटककार,
बंधुवर सिद्धनाथ कुमार को
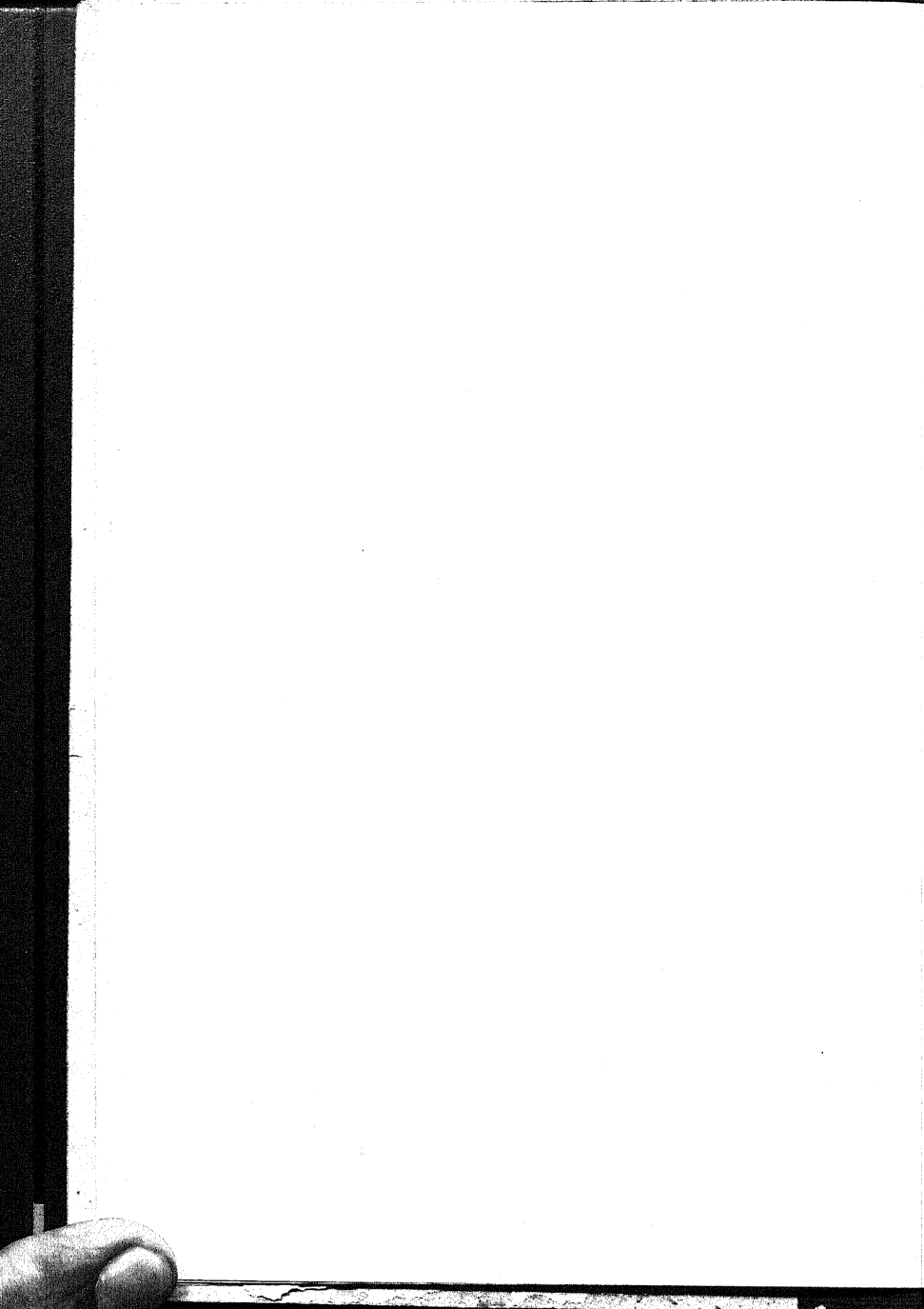
वक्तव्य

घनी अँधेरी रात !

नदी की आत्मा अपनी लहरों से खेल रही थी,

मृत्यु की भयानक शांति थी, श्मसान की गोद में।

तीन मृत्त आत्माओं ने एकांत सम्मिलन किया।

एक ने कहा—यदि मेरी आर्थिक स्थिति ठीक होती, तो

मैं कहाँ-से-कहाँ बढ़ जाता। भाई, पैसा भी कोई चीज है !

दूसरे ने कहा—भले दिनों में दोस्तों की कमी न थी। बुरे दिन

आए, तो सब पल्ला झाड़ कर निकल गए। उनका सहयोग

मिलता, तो मैं सौ वर्ष जीवित रहता। मैं तो चिंता से मरा,

वरना यह क्या मेरी मरने की उम्र थी ?

तीसरे ने कहा—मेरे होनहार होने में किसी को संदेह नहीं था। मैं

तो आधुनिक चित्रकला का 'भगीरथ' कहलाता। मगर, इसके लिए

साधना की आवश्यकता थी। यदि कुछ हजार का सरकारी अनुदान····

तभी नदी-तट के अँधियारे से एक प्रकाश-पुरुष प्रकट हुआ।

उसने आगे बढ़ कर कहा—तुमलोगों को और कुछ नहीं, केवल

आत्मबल और पुरुषार्थ की जरूरत थी। तुमलोगों ने अपने-आप

में इन्हें नहीं ढूँढ़ा, वरन् ये अशेष शक्तियाँ तुम्हें सब कुछ········।

चारों मृतक चकित होकर, उस प्रकाश-पुरुष की ओर लपके,

मगर, वह तो अंतर्धान हो गया। नदी की लहरें खिलखिला उठीं !

हिमांशु श्रीवास्तव

कृतज्ञता-ज्ञापन

उन सभी विद्वान लेखकों के प्रति,
सभी संपादकों के प्रति
और उन सभी प्रकाशकों के प्रति
जिनके द्वारा लिखित, संपादित और
प्रकाशित सामग्रियों का अध्ययन-मनन कर
लेखक ने यह पुस्तक तैयार की है ।

क्रम-सूची

कापीराइट की रक्षा

उसे क्या मालूम कि इस वर्ष लोगों ने इस्टर की खुशियाँ किस प्रकार मनायी हैं। संघर्ष के मोड़ पर खड़ा रहा, वह असाधारण व्यक्तित्व !

इस्टर के पावन दिवस इस रास्ते से आए, उस रास्ते से निकल गए। घड़ी के पेराडुलम हिलते रहे, कैलेराडर का रंगीन डेट-प्लेट जैसे अपने-आप बदलता गया। संघर्ष की धूप ने जवानी के बालों पर नजले उतार दिए। लेखनी की नोक से उसकी सफलता की सीमा-रेखा खिंच चुकी थी, ज़ार के साम्राज्य की सीमा-रेखा तलवार की नोक से खींची गई थी। वैभव के दीप से सम्राट् का महल जगमग-जगमग कर रहा था और निराशा के घने कुहरे में, प्रतिभा का वरद-पुत्र, अपने अस्त की कल्पना में एक निश्चित तिथि के बीच लाल प्रश्न-चिह्न देख रहा था।

रात के ग्यारह बज चुके थे। एक चालीस वर्ष का व्यक्ति, जिसके गालों पर झुर्रियों पड़ गई थीं, जिसके बाल बिखरे थे, आँखे भावुकता से भरीं—जैसे जीवन के उस पार भी देख सकता हो, अपने कमरे में आया। हाँ, उसी

कमरे में, जिसमें उसके नहीं रहने पर ताला लगा रहता था। सबसे पहले उसने शीघ्रतापूर्वक अपना वह जानवरों की खाल से बना कोट उतार कर एक ओर रख दिया, जिस पर बर्फ की असंख्य टुकड़ियाँ गिरी थीं। फिर उसने अंदर से दरवाजा बंद कर लिया। अब उसने अपना वह सस्ता हैट भी कमरे के एक कोने में फेंक दिया, जो बाँस और कागज का बना था। और अब ? अब वह धम्म-से आकर एक कुर्सी पर आ बैठा, जैसे किसी अज्ञात शक्ति ने उसे वहाँ ला पटका हो। कुछ मिनट के बाद ही, वह फिर उठा और कमरे में दबे पाँव टहलने लगा। वह कमरे की दीवारों को देख रहा था, जिस पर मटमैली और हरी काइयाँ जम चुकी थीं। जरा रुका, कुछ ध्यान में न आया। शायद इसीलिए उसने झट एक सिगार सुलगा लिया। सिगार अभी खत्म भी न हो सका था कि वह पागल की भाँति कमरे में रखे हुए एक पुराने सूटकेश की ओर दौड़ा। एक झटके में उसने उसे खोल लिया और भीतर से एक व्यक्ति का चित्र निकाला। उसने उस चित्र को कलेजे से लगा लिया। सहसा उसके मुख से निकला, "नहीं, नहीं, माना कि इस कर्ज के जिम्मेवार तुम भी थे, लेकिन अब तुम हो जो नहीं। मैंने उसे चुकाना स्वीकार कर लिया है। तुम मेरे भाई थे न ! साइबेरिया से लौटने के बाद, जब मैं भटक रहा था, तुम्हारे सिवा मुझे किसी ने प्यार नहीं किया। ओह, एक क्षण का ही प्यार सही, सच्चा प्यार ! कितना दुर्लभ !! कितना अविस्मरणीय !!!"

वह चित्र सूटकेश में बंद कर दिया गया। क्लांत व्यक्ति पुनः कुर्सी पर आ बैठा। सामने की टेबुल और नजदीक खींच ली और लालटेन की धीमी रोशनी को तेज कर दिया। उसने कागज का एक छोटा-सा टुकड़ा लिया और शीघ्रतापूर्वक लिख डाला—

मेरे प्यारे आलिखिन,

आशा है, तुम सकुशल होगे। मैं अपनी कुशलता की जमानत एक आदमी के हाथ सौंप कर आ रहा हूँ। यदि चाहते हो कि मेरी कुशलता मेरे पास लौट आए, तो मेरे लिए एक काम करो।

मुझे एक उपन्यास जल्द-से-जल्द पूरा करना है। मैं जानता हूँ कि यदि मैं लिखने लगूँ, तो निश्चित अवधि के बीच इसे पूरा नहीं कर पाऊँगा। तुम मेरे लिए शीघ्र एक शॉर्टहैंड जानने वाले का प्रबंध कर दो। उसे अपने काम में तेज होना चाहिए। और हाँ, जितनी जल्द भेज सको, उतनी जल्द भेजो। उसे उचित पारिश्रमिक दूँगा।

बस, आज इतना ही, शेष फिर कभी....।

इतना लिख कर उसने अपने हस्ताक्षर कर दिए। आपने पहचाना, यह हस्ताक्षर करने वाला कौन व्यक्ति है? आप हैं मार्मिक अनुभूतियों के अमिय-हलाहल पीनेवाले विश्वविख्यात उपन्याकार डास्टाएव्स्की!

कुछ लोग कहते हैं, कला खेलने के लिए है, जी बहलाने के लिए है; फ़ुर्सत के समय को गुजारने के लिए है। इसे जीवन-नौका का पतवार नहीं बनाया जा सकता। परंतु, क्या यह उस देश का दुर्भाग्य नहीं है, जहाँ का कलाकार बिना दासता को स्वीकार किए जी नहीं सकता? कला तो मानव-समाज का आत्म-विश्लेषण है। कला न होती, तो अजंता और एलोरा के भित्ति-चित्रों में हमारी सभ्यता की कहानी कहाँ अंकित हो पाती? कला न होती, तो आत्म-निरूपण का मार्ग किधर से निकलता? मनुष्य अपने Noble Sentiments and High Ideals को भला कैसे प्रकट कर पाता? लेकिन हम हैं, जो कला के उभरते हुए चेतन को जड़ता

की कब्र में धकेलते हैं। श्रद्धा के फूल ढूँढ़ते हैं, श्रद्धा के पौधों को स्नेह का जल नहीं देते।

'निम्नलोक से लिखे गए पत्र' पढ़ कर देखिए, डास्टाएव्स्की को जीवन के दीर्घकाल तक किस प्रकार नरक की मर्माहत यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। हाँ, वही डास्टाएव्स्की, जिसकी सारी जवानी निर्वासन की अवधि पूरा करने में बीत गई। मानव-प्रेम का कट्टर समर्थक, हमेशा स्नेह के अभाव में तड़पता रहा। जवानी के दिनों में भूख की मार से बढ़ कर कोई और मार नहीं होती। और, उसकी जवानी भरपेट अन्न खाने के लिए तरसती रही।

ज़ारशाही का आतंक सारे रूस पर छाया हुआ था। उस वक्त रूस के नागरिकों के लिए सबसे बड़ा पाप था—बादशाह ज़ार के विरुद्ध एक शब्द बोलना। और, इस पाप के अधिकारी को सिर्फ एक ही चीज इनाम में मिलती थी। वह चीज थी – मौत की सज़ा।

डास्टाएव्स्की बुद्धिजीवी था। वह ज़ारशाही से असंतुष्ट था। वह जानता था कि रूस के लिए ऐसा वक्त आ गया है कि ज़ार के क़दम यदि जमे रहे, तो रूस की जनता का भविष्य हमेशा-हमेशा के लिए अंधकार के गर्त्त में गिर पड़ेगा। एक इतिहासकार ने तो यहाँ तक लिखा है कि उसके समय में, केवल राजघराने के बच्चे और मेनशेविकों के लड़के ही राजनीति-विज्ञान की शिक्षा ले सकते थे। शेष लोगों के बच्चे, जो रूस की राजनीतिक भाषा में 'बोलशेविक' कहे जाते थे, उन वर्गों में बैठ भी नहीं सकते थे।

फिर क्या यह स्वाभाविक नहीं था कि डास्टाएव्स्की राजनीति में सक्रिय भाग लेता? उसने राजनीति में सक्रिय भाग लिया और अन्य राजनैतिक अभियुक्तों के साथ उसके लिए भी प्राण-दंड का आदेश जारी किया गया।

लेकिन, शायद प्रभु येसु को यह स्वीकार नहीं था। ज़ार को उसने सुबुद्धि दी और फाँसी के अंतिम क्षणों में प्राण दंड का आदेश वापस ले लिया गया। परंतु, उसे निर्वासन का दंड मिला। उसे साइबेरिया की उजाड़ और बर्फीली भूमि में भेज दिया गया, जहाँ उसका अपना कोई नहीं था। वह दिन भर निर्वासितों के साथ इधर-उधर मारा फिरता, हृदय को हिला देने वाली बर्फ की ठंढकें खाता, कभी किसी सीधे जानवर के बदन में अपने को सटा कर, थोड़ी गर्मी का अनुभव करता और रात में किसी साइबेरियन किसान को गर्म अंगीठी के पास सो रहता। कभी-कभी किसान झुँझला उठते और उसे दूसरे रोज के लिए और जगह तलाश करने की इत्तला दे देते थे। निर्वासन के इन दिनों में उसे न-जानें कितनी रातें भूखों रहकर और घुटने में सिर छिपाकर बितानी पड़ी थीं।

इस प्रकार एक महान कलाकार का जीवन कुत्ते से भी बदतर बीत रहा था। निर्वासन के चार वर्ष पूरा करने पर मृतप्राय डास्टाएव्स्की अपने वतन को लौटा। असह्य पीड़ाओं ने उसकी शारीरिक शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी थी। लेकिन, कलाकार का महा अस्तित्त्व उसकी चेतना-कोठरी में सुरक्षित था। शरीर का मांस गल गया था, अनुभूति निखर आई थी। हृदय प्रेम का भूखा था। यह शाश्वत् सत्य है, बिल्कुल चिरन्तन ! कलाकार प्रेम का भूखा होता है। कलाकार को प्रेम देकर जीता जा सकता है, अपना बनाया जा सकता है, ठगा जा सकता है, उँगलियों पर नचाया जा सकता है।

उसके इस अभाव से एक छलनामयी ने लाभ उठाया। स्वार्थवश उसने उससे शादी कर ली। किंतु, कुछ रोज के बाद ही, उसे धोखा देकर वह स्वयं इस संसार से चल बसी। डास्टाएव्सकी क्षुब्ध हो उठा।

रूस की राजनीति मुरझाने की अपेक्षा पनप रही थी। उसे अपने भाई से स्नेह भी मिला। यद्यपि पैसे का अभाव था, फिर भी दोनों भाइयों ने मिल कर एक अखबार निकाला। हजारों की संख्या में वह बिकने लगा। सुबह होते ही, वहाँ की जनता सड़कों पर खड़ी, हॉकरों से उस पत्र को खरीदती। जब एक व्यक्ति डास्टाएव्स्की की संपादकीय टिप्पणी पढ़ता होता, तब वहाँ दर्जनों व्यक्ति खड़े होकर उसे मनोयोगपूर्वक ध्यानावस्थित होकर सुनते। परंतु, संघर्ष की आँधी ठहर-ठहर कर बड़े वेग से आया करती है। अचानक उसके भाई की मृत्यु हो गई। प्रेस और पत्र के नाम पर हजारों का कर्ज चढ़ा था। उसने कर्ज देनेवालों का सारा कर्ज चुकता करने का भार अपने ऊपर से लिया।

यह वह समय था, जबकि उसकी रचनाओं की ख्याति सारे रूस में फैल चुकी थी। उसकी रचनाओं से अनभिज्ञ रहनेवाला व्यक्ति बुद्धिजीवी समाज में असभ्य समझा जाता था। लेकिन, उसकी आर्थिक दशा बिलकुल ही अच्छी नहीं थी। वह पैसे-पैसे के लिए मुहताज था। विचारों का बादशाह पैसे के संसार में फकीर बना था। कर्जदारों का तगादा कड़ा रूख अपना रहा था। हर वक्त कर्ज अदा करने की चिंता बनी रहने लगी। वह बिछावन पर जाता, मगर नींद नहीं आती। मनोरंजन के लिए थियेटर और ऑपेरा-हाऊस में घुसता। मगर, वहाँ भी उसका मनोरंजन नहीं होता। वह कुछ समझ नहीं पाता था। गिटार, मैंडोलीन, सैक्सोफोन आदि बाजों के स्वर उसके कानों में बहुत ही तीखा और अप्रिय वेग भर देते; ऑपेरा-हाऊस में आनंद की सृष्टि करनेवाले 'बैले' और 'सिम्फनीज़' उसके कानों में कर्जदारों की कड़ी चेतावनी बन कर गूँजते—"डास्टाएव्स्की, अगर तुमने कर्ज नहीं अदा किया, तो तुम्हें जेल की हवा खानी पड़ेगी………।"

वह सिगार सुलगाता हुआ एक रोज अपने प्रकाशक के यहाँ पहुँचा और कहा, "मुझे रायल्टी के रूप में आठ हजार रूबल दे दो।"

प्रकाशक ने कहा, "इतने रुबल तो दस वर्ष बाद निकलेंगे। हाँ, एक शर्त्त पर छह हजार रुबल ऐडवांस दे सकता हूँ। शर्त्तें लिख देनी होंगी।"

"शर्त्त बताओ।" डास्टाएव्स्की ने पूछा।

"आज के तीसवें रोज मुझे एक तगड़ा उपन्यास तैयार करके दे दो। छः हजार रुबल अभी दे दूँगा। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो तुम्हारी सारी रचनाओं का कापीराइट मेरा हो रहेगा।" प्रकाशक बोला।

"मुझे मंजूर है।"

प्रकाशक ने छह हजार रुबल दे दिये और लिखित शर्त्त करा ली। डास्टाएव्स्की ने रुबल कर्जदारों को दे डाले। मगर, प्रश्न यह था कि उन्तीस रोज में उपन्यास लिखा कैसे जाए? इस संबंध में आलिखिन नामक उसके एक मित्र ने, जो शॉर्टहैंड का अध्यापक था, उसकी सहायता की। उसने एक नवयुवती को, जो शॉर्टहैंड में दक्ष थी, उसका पत्र मिलते ही उसके पास भेजा। उस नवयुवती का नाम था—अन्ना ग्रोगोरेवना।

अन्ना ग्रोगोरेवना सही अर्थ में नारी थी। वही नारी जो पुरुष को जन्म देती है, वही नारी जो पुरुष को स्नेह देती है, प्यार देती है; प्रेरणा और सांत्वना देती है। वही नारी, जो पुरुष के अस्तित्व में धब्बे नहीं, गुलाब के रंग लगाती है। वह पढ़ी-लिखी तो थी, मगर गरीब घराने में पैदा हुई थी। यह तो ज्ञान और सिक्के का परंपरागत संस्कार है, दोनों एक दूसरे से बैर रखते हैं। प्रकृति का यह व्यवधान ज्ञानवान के विचारों

का मार्ग प्रशस्त करता है। सिक्के बटोरनेवाला ज्ञानार्जन नहीं कर सकता।

अन्ना अत्यंत भावुक प्रकृति की युवती था। उसने अब तक डास्टाएव्स्की की प्रकाशित लगभग सारी रचनाएँ पढ़ ली थीं। एक जगह उसने अपनी डायरी में लिखा है कि 'डास्टाएव्स्की रचित 'मृतकगृह के संस्मरण' पढ़ कर मैं खूब रोयी थी।' किसी की लेखनी का दिल पर इतना असर होना तो महत्त्व की बात है। उसे डास्टाएव्स्की के पास भेजने से पहले जब आलिखिन ने बतलाया कि उसे डास्टाएव्स्की के पास उपन्यास लिखने के लिए जाना होगा तो उसने आलिखिन से पूछा, "सच, मैं उनके पास जाऊँगी?"

उसे जैसे अपने इस सौभाग्य पर विश्वास ही न हुआ। लेकिन, आलिखिन ने उसे विश्वास दिलाया और उसने डास्टाएव्स्की के नाम एक पत्र भी दिया। उसने डास्टाएव्स्की की किताबें पढ़ी थीं, उसे देखा नहीं था। जिस समय उसका विश्वविख्यात उपन्यास 'क्राइम एण्ड पनिशमेन्ट' एक मासिक पत्र में धारावाहिक रूप से निकल रहा था, वह उसे बड़े चाव से पढ़ती और लेखक के स्वभाव, विचार आदि की भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ किया करती थी।

जिस मकान में डास्टाएव्स्की रहता था, वह मकान बड़ा था। लेकिन, उस मकान की हालत अच्छी नहीं थी। सारा मकान वीरान और बेमरम्मत पड़ा था। मकान के आसपास रहने वाले लोग साधारण मजदूर और छोटे-छोटे दूकानदार थे। दूसरे रोज अन्ना आलिखिन का पत्र लेकर डास्टाएव्स्की के मकान पर आई। मकान का मुख्य द्वार भीतर से बंद था। अन्ना डरी और सहमी हुई थी। उसे इतना विश्वास अवश्य हुआ कि उसका प्रिय

लेखक मकान के अंदर है। मगर, उसमें इतना साहस कहाँ था कि वह आवाज देकर दरवाजा खुलवाती ? वह लगभग पैंतालीस मिनट तक बाहर ही खड़ी रही। इस बीच वह सोच रही थी, वे क्या पूछेंगे, वह क्या जवाब देगी। उनके सामने वह कैसे बैठ पाएगी, किस बूते पर कुछ बोल सकेगी।

तभी एक झटके के साथ दरवाजा खुला। एक व्यक्ति निकला, जिसके चेहरे पर परेशानी के चिन्ह स्पष्ट हो रहे थे। उसकी भूरी-भूरी आँखों से ऐसी ज्योति निकल रही थी, जिसके प्रकाश में वह व्यक्ति अपनी भयानक परिस्थिति को देख रहा था। बाहर निकलते ही उसने अपने कोट की जेब में दोनों हाथ डाल लिये और बड़े ही नम्र शब्दों में अन्ना से पूछा, "लड़की, तुम किससे मिलना चाहती हो ?"

"महान लेखक से।" अन्ना के मुख से बस इतना ही निकला।

"महान लेखक से....?" उस व्यक्ति को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "व्यंग्य तो नहीं कर रही हो ? किसकी ओर से तगादा करने आई हो ?"

"जी मैं तगादा करने नहीं, मैं महान लेखक फ्योदर डास्टाएव्स्की से मिलना चाहती हूँ। क्या आप कृपा कर मुझे बतायेंगे कि वे इस वक्त घर में हैं या नहीं ?" अन्ना ने कहा।

"हैं तो, आप चाहती क्या हैं ?" उस व्यक्ति ने पूछा।

"मुझे उनसे मिलना है। मुझे शॉर्टहैंड मास्टर आलिखिन ने भेजा है।"

"तो लीजिए, महान लेखक डास्टाएव्स्की तो नहीं; लेकिन सिर्फ अभागा डास्टाएव्स्की आपसे बातें कर रहा है।" डास्टाएव्स्की बोला।

संभ्रम से अन्ना के रोंगटे खड़े हो गए। उसे एक खुशी तो इस बात की थी कि उसे काम मिल गया है। कुछ रुबल मिल जायँगे, लेकिन उसे इससे अधिक खुशी इस बात की थी कि वह उस महान लेखक के प्रत्यक्ष दर्शन करने का सुअवसर पा गई थी। उसके मुख से एक अस्फुट स्वर निकला, "तो आप ही.......।"

"जी, तो क्या आप शॉर्टहैंड जानती हैं?"

"जी.......।"

"आइए अंदर।"

डास्टाएव्स्की के पीछे-पीछे अन्ना उसके घर में गई। उसने धारा-वाहिक रूप से निकलते हुए 'अपराध और दंड' उपन्यास को बड़े शौक से पढ़ा था। उपन्यास के नायक के निवास-गृह का जैसा वर्णन था, अन्ना ने डास्टाएव्स्की के मकान को ठीक वैसा ही पाया। उसने डास्टाएव्स्की की आँखें बचा कर उसे भर नजर देखा। उसने देखा कि वह वृद्ध हो चला है। उसके मुखमंडल पर असाधारण परेशानी और अनुभूतियों की छाया तैर रही थी। लेकिन, वह कलाकार जो था। क्षण-क्षण पर उसके भाव बदलते और कभी-कभी वह नौजवान-सा प्रतीत होने लगता था। उसने स्वयं चाय तैयार की और अन्ना के साथ चाय पीते हुए उसके काम की जानकारी के संबंध में बातें करने लगा। उसने गंभीर मुद्रा में अन्ना को देखते रहने की कोशिश की और उसे बतलाया कि कितनी जल्द उपन्यास को पूरा करना है। कार्य-क्षमता के अभाव में किस प्रकार डास्टाएव्स्को को अपने सम्मान के साथ ही अपनी समस्त रचनाओं का कापीराइट भी खो देना पड़ेगा।

अन्ना ने जब आलिखिन का दिया हुआ पत्र उसे दिया, तब उसने पढ़कर पत्र को एक ओर असावधानी से रख दिया और कहा, "काम आलिखिन को नहीं, काम तुम्हें करना है। जब तक तुम इसे अपना काम नहीं समझोगी, काम पूरा नहीं होगा। तुम्हारी कार्य-क्षमता इसमें सुफल और सार्थक है कि तुम इस दायित्व को समझ लो।"

"कोशिश करूँगी, श्रीमान्!" अन्ना बोली।

इसके बाद उसने अन्ना से चार-पाँच पृष्ठ का मैटर शॉर्टहैंड में लिखवा कर उसकी परीक्षा ली और कहा, "ठीक है, कल से सवेरे आ जाया करो।"

प्रथम मिलन में अन्ना ने डास्टाएव्स्की को अत्यंत नीरस पाया। उसने बिलकुल सूखी बातें की थीं। अन्ना को निराशा हुई। जिस लेखक की रचनाओं में हृदय की विशालता और भावुकता का जीवंत दिग्दर्शन हो, वह भला इतना नीरस? लेकिन, दूसरे दिन अन्ना की यह धारणा सदा-सदा के लिए बदल गई। डास्टाएव्स्की ने आज उससे इतनी सहृदयतापूर्वक बातें कीं, जैसे वह उसे बरसों से जानता रहा हो। अन्ना ने अब समझा कि वह बिलकुल नारियल की तरह ऊपर से कड़ा और भीतर से अति मुलायम है। आज उसने डास्टाएव्स्की के प्रश्नों के उत्तर भी ठीक-ठीक दिए और निर्भय होकर बातें भी कीं। यह वह युग था, जब रूस की नवशिक्षित युवतियाँ अत्यंत ढीठ, बन-सँवर कर रहनेवाली और पुरुषों से बातें करने में बेतकल्लुफ होती थीं। और, इन्हीं कारणों से फ्योदर डास्टाएव्स्की को लड़कियों के प्रति चिढ़ की भावना रहती थी। मगर, अन्ना में उसने नारी-सुलभ-सौन्दर्य और लज्जा दोनों का अनुभव किया। उसके बच्चों के-से गहरे

लाल होंठों में भावुकता और संकोच की भीनी गुलाबी थी। वह नवयुवती सहृदयता और गंभीरता की प्रतिमूर्त्ति थी। और, शायद इसीलिए डास्टाएव्स्की को वह बहुत पसंद आ गई।

उस रोज उसने अन्ना से थोड़ा-सा काम लिया। दो परिच्छेद लिखवाने के बाद उसका कलात्मक मूड बदल गया। उसने कहा, "अब जाओ, फिर कल ठीक समय पर आना।"

अब अन्ना उसके यहाँ नियमपूर्वक समय पर आने-जाने लगी। सचमुच डास्टाएव्स्की के साथ काम करने में उसका मन रम गया। एक रोज डास्टाएव्स्की उसे जो कुछ डिक्टेट करा देता, दूसरे रोज वह उसे प्रचलित लिपि में लिख कर लिये आती। डास्टाएव्स्की उसे सुनता और पूर्ण संतोष का अनुभव करता था। उसके साथ अन्ना की घनिष्ठता बढ़ती गई। उसकी खूबियों से प्रभावित होनेवाले महान कलाकार ने समझा, अन्ना उससे भिन्न नहीं है। जब कभी डिक्टेट कराते-कराते उसका मन ऊब जाता, तब वह अन्ना को चाय तैयार करने के लिए कहता। चाय तैयार होती और दोनों चाय पीने लगते। इसी सिलसिले में डास्टाएव्स्की उसे अपनी दुःखद जीवन-गाथा के भाग सुनाया करता। शायद इससे उसके हृदय का बोझ हल्का होता था। अन्ना उसकी परेशानियों और निराशाजनित भावों के प्रति सहानुभूति प्रकट करती थी। डास्टाएव्स्की ने उसे अपना सब कुछ बतला दिया। यह ठीक है कि अन्ना को अभी स्कूल छोड़े हुए अधिक दिन नहीं हुए थे, लेकिन गरीब परिवार में पैदा होने के कारण उसे संसार के अनेक कड़े अनुभव हो चुके थे और वह समझने लगी थी कि जीवन में सुख का सौदा कितना महँगा और अलभ्य होता है। डास्टाएव्स्की के प्रति उसके

हृदय में अनंत संवेदना का सागर उमड़ पड़ा और खास कर तब, जब उसने यह जान लिया कि इस संसार में इतना बड़ा लेखक अकेला है। अपना कहने के लिए इसका कोई नहीं है और एक स्त्री ने इसकी भावुकता का गलत लाभ उठाया था।

शनैः शनैः बातों-बातों दोनों का, एक दूसरे के प्रति पारस्परिक आकर्षण बढता गया। अन्ना चाहती थी कि अपनी संपूर्ण सहृदयता को वह उसके हृदय में उड़ेल दे। जब उसे एकांत समय मिलता, वह सोचती, ओह ! यह महान लेखक किस प्रकार भाग्यहीन बना हुआ है !! प्रभु येसु, काश मुझे इस अभागे की सेवा करने का मौका मिलता तो यह समझता कि संसार में उसका भी कोई है। यह अपनी सारी निराशाओं को भूल जाता, अपने पिछले दुःखों को एक घटनामात्र समझता और अपने अव्यवस्थित जीवन को नए सिरे से व्यवस्था के साँचे में ढाल लेता। लेकिन, क्या यह सौभाग्य मेरे नसीब में बदा है ?

रह-रह कर अन्ना के हृदय में एक ज्वार आता। वह चाहती कि डास्टाएव्स्की से सब कुछ कह दे, मगर शील, संकोच और पूर्व स्वीकृति के अभाव में वह अपनी भावनाओं को वश में किए रहती थी। उसने अपने आपको रोकने की असाधारण चेष्टा की। उसकी कार्य-क्षमता के कारण उपन्यास समय से पहले ही समाप्ति पर आ गया। अन्ना के कष्ट का पारावार न रहा। उसके भविष्य में, जुदाई का कितना बड़ा साया फैला हुआ नजर आ रहा था ! वह रूसी साहित्याकाश के एक महान नक्षत्र के प्रकाश से वंचित जो होने वाली थी। वह सोचने लगी, अब तो उपन्यास पूरा हो जाएगा और फिर उसे डास्टाएव्स्की के यहाँ नहीं आना होगा। उसके अनुभूतियों के शब्द, उसका महान संपर्क, उसे फिर कहाँ मिलेगा ?

आज उपन्यास का अंतिम परिच्छेद डास्टाएव्स्की ने डिक्टेट करा दिया। अन्ना की खुशी का ठिकाना न रहा। सहसा उसके मुख से निकला, "अब तो आपकी रचनाओं का कापीराइट प्रकाशक नहीं जब्त कर सकता ?"

डास्टाएव्स्की ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "हाँ, अब कापीराइट की रक्षा हो गई। मगर, तुम न होती तो यह काम क्या मुझसे हो पाता ? अन्ना, तुम बड़ी अच्छी लड़की हो।"

"मुझे शर्मिन्दा न कीजिए।" अन्ना बोली।

"नहीं, नहीं, वैसे भी तुम बहुत शर्मीली लड़की हो। देखो, मैं उपन्यास पूरा होने की खुशी में, अपने लेखक दोस्तों को परसों पार्टी दूँगा। पार्टी में मैं तुम्हें निमंत्रित करता हूँ। अवश्य आओगी।" डास्टाएव्स्की ने कहा।

लेकिन, शर्मीली अन्ना पार्टी में नहीं जा सकी। भला, वह बड़े-बड़े लेखकों के साथ कैसे बैठती। न जाने, वे लोग कैसे बातें करते। अन्ना तो बिल्कुल एक बुत की तरह बैठी ही रहती। संकोच ने उसे रोक दिया।

३० अक्तूबर !

डास्टाएव्स्की की वर्ष-गाँठ !!

अन्ना ग्रोगोरेवना को यह शुभ तिथि मालूम थी। और आज उपन्यास के अंतिम भाग की पांडुलिपि भी दे देनी थी। आज अन्ना ने शृंगार किया। उसने रेशमी गाउन पहन लिया। भूरे-भूरे, घुँघराले और लहराते हुए केश-पुंज को सँवारा। इसके बाद उसने पांडुलिपि की फाइल उठा ली और पहुँची अपने प्रिय लेखक के मकान पर। आज डास्टाएव्स्की ने

अन्ना से मुस्कुरा-मुस्कुरा कर बातें कीं और पारिश्रमिक स्वरूप उसे पचास रुबल देते हुए कहा, "ये रुबल पारिश्रमिक नहीं हैं, तुम इनसे थियेटर देखना। तुम्हारी मिहनत और सहायता का मोल निर्धन डास्टाएव्स्की नहीं दे सकता। और हाँ, तुम एक काम कब करोगी ?"

"कौन-सा काम ?" अन्ना ने पूछा।

"क्या तुम मुझे अपने घर चाय पीने का निमंत्रण नहीं दोगी ?"

"मेरे घर ... आप चाय पियेंगे...?" अन्ना अधिक न बोल सकी। उसे आश्चर्य और संकोच हुआ। क्या इतना बड़ा ख्यातिप्राप्त लेखक उस निर्धन लड़की के घर जाकर चाय पीना पसंद करेगा ? यह बात तो उसकी कल्पना में भी नहीं आ सकती थी। वह लज्जा से गड़ गई; क्योंकि वह एक अँधेरी गली के भीतर, एक साधारण और बेमरम्मत मकान में, अपनी माँ के साथ रहती थी। वहाँ अधिकतर असभ्य वर्ग के लोग रहते थे। उनमें अधिकतर अपढ़-गँवार, चोर, और जुआरी थे। शाम होते ही वे शराब पीकर सड़कों पर पड़े-पड़े गालियाँ बका करते और पूरी रात को मानवताविहीन कार्य करने में गुजारते थे। हाँ, इसके पड़ोसी कुछ वैसे लोग भी थे, जो मेनशेविक परिवारों के हाथ बिके हुए थे और गुलामी जिनकी मृत्युपर्यंत की जीविका थी। अन्ना ने डास्टाएव्स्की को टालने की कोशिश की। उसने कहा, "क्या आप ऐसी इच्छा व्यक्त कर रहे हैं, जिस पर पूर्ण रूप से विश्वास किया जा सकता है ?"

डास्टाएव्स्की की आँखें करुणा से भर आईं। उसने कहा, "आखिर तुम मुझसे रंज क्यों हो अन्ना ! सच बतलाना, मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है, जो तुम मुझे टाल रही हो ? अन्ना, क्या सचमुच तुम मुझसे नाराज हो ?"

अब अन्ना विवश हो गई। उसने डास्टाएव्स्की को अपने यहाँ चाय पर बुलाया। डास्टाएव्स्की उसके घर गया, जहाँ अन्ना के प्रेम के कारण उसे किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नहीं हुआ। अन्ना के स्नेह ने उसे अन्ना में इतना लिप्त कर दिया कि डास्टाएव्स्की वहाँ दुबारे गया और इस बार उसने अन्ना को अपने यहाँ निमंत्रित किया। भला अन्ना कैसे अस्वीकार कर सकती थी ? वादे के अनुसार वह निश्चित समय पर उसके यहाँ गई। आज अन्ना ने डास्टाएव्स्की को एक प्रकार से गंभीर पाया। आज से पहले इतना गंभीर अन्ना ने उसे कभी नहीं पाया था। अब कर्ज चुकाने की चिंताओं से उसे मुक्ति मिल गई थी। अन्ना के पास आते ही डास्टाएव्स्की ने कहा, "अहा, तुम आ गई अच्छी लड़की ? मैं सोचता था कि शायद तुम मुझे भूल गई। लेकिन, तुम्हें देखकर बहुत खुशी हुई कि आखिर तुम आ गई।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है कि मेरी उपस्थिति से आपको खुशी हुई।" अन्ना बोली।

अब तक दोनों आमने-सामने बैठ गए थे। बीच में एक डेस्क थी, जिस पर पंख वाली कलम और एक दावात रखी थी। कागज के कुछ टुकड़े बिखरे पड़े थे, जिन पर डास्टाएव्स्की ने कुछ-कुछ लिख कर छोड़ दिया था। एक सिगार सुलगा कर उसने अन्ना की गहरी और नीली आँखों में देखते हुए कहा, "तुम्हें एक बात बतलाना चाहता हूँ। वह यह, कि मैं एक प्रेम-कहानी का प्लाट तैयार कर रहा हूँ।"

"क्या मैं वह प्लाट सुन सकती हूँ, श्रीमान् ?" अन्ना ने विनम्र होकर पूछा।

"क्यों नहीं, तुम्हें तो सुनाऊँगा ही। शायद तुम्हें पसंद न आए।"

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। आपकी रचनाएँ मुझे बहुत प्यारी लगती हैं।"—अन्ना ने डास्टाएव्स्की के एक उपन्यास का हवाला देते हुए कहा, "आपका 'ब्रदर्स करमाजोफ़' नामक उपन्यास तो मेरी समझ से विश्व-उपन्यास-साहित्य में शीर्ष-स्थान रखता है।"

उसने अपनी भावनाएँ दिल खोल कर व्यक्त कीं।

डास्टाएव्स्की ने जब देखा कि उसकी रचनाओं की ओर अन्ना का विशेष झुकाव है, तब उसने प्रेम-कहानी का प्लाट सुनाना प्रारंभ किया। प्रेम-कहानी का प्लाट कुछ और नहीं, बल्कि उसने अपना एक कल्पित नाम रख लिया था और अपने ही जीवन की सच्ची घटनाओं पर आधारित एक प्रेम-कहानी का प्लाट तैयार कर लिया था। उसने अन्ना को सब कुछ सुनाया और प्लाट का अंतिम भाग सुनाते हुए कहा, "और जानती हो, अंत में क्या होता है?"

"क्या होता है?" अन्ना ने पूछा।

"अंत में असफलता, निराशा और बुरी परिस्थितियों में फँसा हुआ मेरा वह अभागा नायक एक नवयुवती से प्रेम करने लगता है। एक बात तुम्हें जान कर शायद आश्चर्य हो कि उस नवयुवती का नाम मैंने 'अन्ना' रखा है।" डास्टाएव्सकी ने कहा। परंतु, इससे अन्ना को कोई आश्चर्य न हुआ। हाँ, उसके मन में एक प्रकार की जलन अवश्य हुई; क्योंकि उसने सुन रखा था कि डास्टाएव्स्की किसी अन्ना नाम की लड़की से प्रेम करता है। और, आज उसने यह भी देख लिया कि अन्ना के प्रेम में डास्टाएव्स्की इस प्रकार वशीभूत हो गया है कि उसे अपने साहित्य में अमर करने पर तुला हुआ है।

अन्ना के कुछ भी बोलने के पहले डास्टाएव्स्की ने फिर उसकी भाव-भरित, गहरी नीली आँखों में देख कर पूछा, "अब तुम्हीं बतलाओ कि क्या यह संभव है कि वह नवयुवती वैसे असफल कलाकार नायक को, जो बूढ़ा हो चला है, सच्चे हृदय से प्यार कर सकती है ?"

अन्ना ने झट उत्तर दिया, "संभव क्यों नहीं है ? अगर आपकी अन्ना गंभीर स्वभाव वाली लड़की है, अगर उसमें सच्चे प्रेम का बीज अंकुरित हो चुका है, अगर उसे जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त हो चुके हैं, तो वह अवश्य ही आपके दुखी नायक को प्यार कर सकती है।"

"अन्ना, क्या तुम यह सच कह रही हो ?' डास्टाएव्स्की ने पूछा।

"कम-से-कम मेरी बुद्धि इतनी बातें स्वीकार करती है ।" अन्ना बोली।

इतना सुनते ही डास्टाएव्स्की का चेहरा लाल हो आया, जैसे वह बहुत ही घबड़ा गया हो । उसके मोटे-मोटे होठ थरथराने लगे। लेकिन, उसने तत्क्षण अन्ना से पूछा, "अच्छा अन्ना ! मान लो कि वह अभागा कलाकार नायक मैं ही हूँ और उससे प्रेम करनेवाली नायिका तुम हो। अगर मैं तुम्हारे सामने अपने विवाह का प्रस्ताव रखूँ, तो भला तुम क्या उत्तर दोगी ?"

प्रेम और आकर्षण का यह भेद अब समझदार अन्ना से छिपा न रहा। एक बार उसने यह चाहा कि वास्तविकता को टाल दे, यथार्थ पर परदा डाल दे। लेकिन, वह भी तो डास्टाएव्स्की को प्यार करने लगी थी। वह अपने प्रियतम को भला द्विविधा में क्यों रखती, जब कि उसकी अस्वीकृति से डास्टाएव्स्की का दिल टूट जाता और फिर उसका जुड़ना मुश्किल था। वह

स्वयं भी तो इस सौभाग्य से अपने को वंचित करना नहीं चाहती थी। उसे अपनी वास्तविक इच्छा को व्यक्त करने का मौका मिला। वह बोली, "मैं कहूँगी कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और सच्चे हृदय से तबतक प्यार करती रहूँगी, जब तक मेरे प्राण-पखेरू उड़ न जायँ।"

अपनी प्यारी अन्ना के मुख से इतनी बातें सुनते ही डास्टाएव्स्की प्रेम-विह्वल हो गया। उसकी चिर-संचित कल्पना की रेखाओं में वास्तविकता के रंग उभर आये। अन्ना की सहृदयता ने कलाकार को बेमोल खरीद लिया। वह अपनी कुर्सी से विह्वल होकर उठा और अन्ना के पास पहुँचा। उसने अन्ना को अपनी भुजाओं में आबद्ध कर लिया और उसके सेव-जैसे निष्कलुष गालों पर मधुर चुंबन का चिन्ह अंकित कर दिया। कोमल, भावुक और खूबसूरत अन्ना ने अपने स्वप्न को जागृत अवस्था में देखा। आनंदातिरेक से उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। उसने अपने सौभाग्य को अपनी गोद में खेलते देखा। ओह, महान् कलाकार का चिर-स्नेह....!

अन्ना जब घर आयी, तब उसने सहेलियों से यह बात प्रकट कर दी कि वह शीघ्र ही महान उपन्यासकर डास्टाएव्स्की की जीवन-संगिनी बनने जा रही है। लेकिन, चिढ़वश उसकी सहेलियों ने उसे बतलाया कि उस अधेड़ डास्टाएव्स्की को मिरगी का भयानक रोग है। वैसे खूसट से ब्याह होना तो कोई प्रसन्नता की बात नहीं है। लेकिन, अब अन्ना भौतिक दृष्टि के प्रकाश में डास्टाएव्स्की से अलग थी। भीतर कोई भी रेखा, कोई भी खाई, कोई भी दीवार नहीं थी। उस अभागे कलाकार की आत्मा में अन्ना अपने को उसी प्रकार देख रही थी, जिस प्रकार दर्पण के सामने कोई अपने-आप को, ठीक अपनी ही तरह देख पाता है।

निश्चित समय पर दोनों का विवाह हो गया। चालीस वर्ष की दीर्घ अवस्था के बाद डास्टाएव्स्की के जीवन में वास्तविक प्रेम की छाया मिली। दोनों एक दूसरे को पाकर अतीव प्रसन्न थे। अन्ना डास्टाएव्स्की के अवगुणों से भी उतना ही प्रेम करती थी, जितना उसके गुणों से। विवाहोपरांत हनीमून मनाने के लिए दोनों जर्मनी गए, जहाँ जुआ में डास्टाएव्स्की अन्ना के जेवर, कपड़े और यहाँ तक कि अपने ओवरकोट तक को हार गया। लेकिन, अन्ना के सुख और संतोष का पारावार न था। वह तो केवल अपने प्यारे डास्टाएव्स्की को चाहती थी। प्रेम-विभोर होकर उसने कई बार कहा था—'मेरा प्यारा फ्योदर! वह मुझे कितना प्यार करता है……मैं उसे पाकर कितनी सुखी हूँ…………मेरा प्यारा डास्टाएव्स्की…………वह कितना महान है!"

असफलता की पीठ पर

"मैं परमेश्वर की कृपा से, संसार की अमूल्य निधि संतोष का स्वामी हूँ। अतः, मुझे जीवन के कड़ुवे-मीठे स्वादों का काफी अनुभव हो चुका है। असफलताओं के उतार चढ़ाव मुझे कभी भी पथ-विचलित नहीं कर सकते।"

ये शब्द हैं, उस व्यक्ति के जो अपनी माता के गर्भ से एक कुरूप और लंगड़ा शिशु के रूप में पैदा हुआ था। उसकी पीठ पर भी एक कूबड़ निकली हुई थी, जिसके अनुपात में उसके शरीर के अन्य अंग भी बे-डौल थे। माता-पिता वृद्धावस्था को पहुँच रहे थे। वृद्धावस्था में प्राप्त अपनी प्यारी संतान को इस रूप में पाकर, उनके शोक की सीमा न रही। वे अपने कुरूप और विकलांग शिशु को गोद में लेते, चूमते-पुचकारते, मगर उसके भविष्य के प्रति उनका दिल हमेशा आधा हुआ रहता।

आज से शताब्दी-वर्ष पूर्व यह कुरूप बालक जर्मनी के ब्रेसलो नामक नगर में पैदा हुआ था। उसके माँ-बाप साधारण किसान थे। माँ-बाप ने सोचा, पुत्र की यह शारीरिक कुरूपता तभी दूर होगी, जब यह पढ़-लिख कर कुछ करेगा। उसे विद्याभ्यास कराना चाहिए। ज्ञान और विद्या ही तो मनुष्य का मानसिक सौंदर्य है। और, माता-पिता ने बच्चे को पढ़ाने

के लिए कमर कस ली। जब वह कुरूप बालक प्रारंभिक शिक्षा पूरी करके, उच्च शिक्षा के लिए, शहर के कॉलेज में पहुँचा, तब उसकी प्रतिभा देख कर प्रोफेसरों को भी दाँतो-तले उँगलिया दबानी पड़ीं। गणित और भौतिक विज्ञान के नए-नए प्रश्न कर, वह प्रोफेसरों को भी चक्कर में डाल देता। और, जब उसके प्रश्नों के उत्तर देने के बदले प्रोफेसर सर खुजलाने लगते, तब वह स्वयं प्रश्न का उत्तर देकर उनके सर की खुजलाहट दूर कर देता था।

अमरीका का बंदरगाह !

जहाज आकर रुका था। लाखों यात्री बोट से उतर कर किनारे आ रहे थे। इमीग्रेशन-विभाग के अधिकारी पूरी सतर्कता से यात्रियों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। यात्रियों की भीड़ में एक प्रवासी जर्मन भी था, जिसके हृदय में आकांक्षा, आशा और उत्साह के असीम भाव भरे थे। लेकिन, इमीग्रेशन-विभाग के एक अफसर ने उसे रोक लिया। वह अमरीका में प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि धूल से सने हुए उसके बाल, फटे-पुराने मैले-कुचैले कपड़े, इस बात की गवाही दे रहे थे कि वह कोई मुफलिस है ! गैरजिम्मेवार !!

प्रवासी जर्मन की सारी आकांक्षा और आशा पर पानी फिर गया। ओह, तो क्या चाँदी-सोने के सिक्के और बहुमूल्य वस्त्र ही मनुष्य के लिए यह प्रमाण है कि वह सभ्य, सज्जन और अपने कर्त्तव्यों के प्रति पूर्ण जिम्मेवारी निबाहने वाला है ? उसके दिल को सदमा पहुँचा, महान मानसिक पीड़ा पहुँची। समाज ने यह कैसी व्यवस्था बना डाली है ? मानव की कब्र पर दीप-दान करो, किंतु मानव की आत्मा अंधकार में भटकती रहे। जीते-जी उसे खूब परेशान करो, मरने के बाद उसका स्मारक बनाओ। दिल के गुबार

आँखों की राह आँसू बन कर उतर आए। उसकी आँखों से आँसू की बूँदे टपकने लगीं और उसके मुख से एक अस्फुट पंक्ति निकली, "मेरे पास महान वैज्ञानिक एडिसन का एक पत्र है ...।"

"एडिसन के पत्र से क्या होने वाला है?"—कहते हुए एक इमीग्रेशन-अफसर ने कहा, "देखें तो वह पत्र।"

प्रवासी ने वह पत्र अफसर के हाथ पर रख दिया, जिसे आचार्य एडिसन ने अमरीका के प्रधान इंजीनीयर के नाम परिचय-पत्र के रूप में दिया था।

लेकिन, इमीग्रेशन-विभाग के अफसर ने उस पत्र को सरसरी निगाहों से देख कर लौटा दिया। प्रवासो ने पूछा, "अब आपकी क्या आज्ञा है?"

उत्तर में अफसर ने अस्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया। प्रवासी का, जो अभी बिलकुल नौजवान था, हृदय दुःख से आक्रांत हो उठा। उसने चाहा कि अब वह हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए फूट-फूट कर रो दे, आँखों के जल से ज्ञान के सुनहले धब्बों को भी धो डाले। लेकिन, संसार को उस महान व्यक्ति से महान देन मिलने वाली थी। एक अमेरिकन को उस पर दया आ गई, जो इसी जहाज पर सफर करता हुआ स्वदेश लौट रहा था। वह अमरीका का एक प्रमुख व्यक्ति था। किसी प्रकार का परिचय नहीं होते हुए भी, उसने उस नौजवान को अमरीका में प्रवेश पाने की स्वीकृति दिलवानी चाही और उसकी सिफारिश पर इमीग्रेशन-विभाग वालों ने उसे नगर में प्रवेश करने की स्वीकृति दे दी।

चार्ल्स स्टीनमेट्स !

हाँ, यह मुफलिस नौजवान है, चार्ल्स स्टीनमेट्स ! विद्युत-जगत का भगीरथ !! यह उस युग की घटना है, जब अपने आविष्कारों के कारण महान

वैज्ञानिक समूचे अमरीका वालों के होठों पर चढ़े हुए थे। किसी भी सभ्य समाज में टॉमस एडिसन की चर्चा के बिना, महफिल का रंग फीका जान पड़ता था। साधना और आविष्कार का यह महान नायक टॉमस एडिसन के नाम से प्रभावित हुआ था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह अमरीका-जैसी नई दुनिया को देखे। चार्ल्स स्टीनमेट्स उन आविष्कारकों में से थे, जिन्होंने विद्युत-ज्ञान और वैज्ञानिक प्रयोगवाद के थोथे सिद्धांत को महानतम चमत्कार के रूप में परिवर्तित किया। स्टीनमेट्स ने विद्युत की सीमित उपयोगिता को निस्सीम जन-कल्याण की दिशा में मोड़ने की कसम ले ली थी और अमरीका-जैसी नई दुनिया, यह तो उसके लिए बिल्कुल कल्पना की भूमि थी। न कोई हमराज, न हमशाद। ज्ञान-विज्ञान के पथ पर प्राणों की बाजी लगाने वालों के मित्र तो बिरले ही होते हैं। सागर के तट पर खड़े, केवल दूर से लहरें गिनने वाले रत्नप्रसवा सागर के हृदय में नहीं समा सकते। कला कहती है, विज्ञान कहता है— 'अरे कलाकार, ओ वैज्ञानिक! पैसे की सतह पर पाँव रखोगे, तो मेरी सतह से फिसल जाओगे। मेरे प्यार का अक्षय भंडार केवल उनके लिए खुला है, जो सुख से नफरत करते हैं, जो विश्राम को प्रगति का बाधक मानते हैं। संसार की सफेद चादर छोड़ कर, मेरे अस्तित्व की चादर में अपने को छिपा लो। ओ कलाकार, अरे वैज्ञानिक, मार्ग नहीं, मंजिल देख!''

और, चार्ल्स स्टीनमेट्स के कानों में यही शब्द सुनायी दे रहे थे। जिस समय वह अमरीका पहुँचा, निराशा उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गई। पास में एक पौंड नहीं, एक शिलिंग नहीं। फल यह हुआ कि रोटियों के लाले पड़ने लगे। लेकिन, कौन कहता है कि साधन के अभाव में प्रतिभा

कुंठित हो जाती है ? प्रतिभा के पुत्र तो दुर्भाग्य के चैलेंज को रास्ते-रास्ते स्वीकार करते चलते हैं। उस व्यक्ति को हम प्रतिभाशाली क्यों कहें, जो अपने विकास का पथ न बना सके ?

हक़ नहीं जीने का उसको
जिसका चेहरा ज़र्द है।
खुदकुशी है फर्ज उस पर,
खून जिसका सर्द है॥

जो अपने कदमों की ख़ाक पर आसमान के सितारों को भी न्यौछावर करवाने वाले होते हैं; वे अपनी ज़िंदगी को मुट्ठी में लिये फिरते हैं, छाती में नहीं।

"चार्ल्स ! तुम्हें यहाँ रहना है। कोई उपाय करो।"

हृदय के किसी कोने से यह आवाज आयी। और, और वह हाँफता-दौड़ता एक हैट बनाने वाली फैक्टरी के फाटक पर पहुँचा। फैक्टरी चल रही थी। बड़ी दिक्कत के बाद वह मैनेजर से मिल सका। और, उसने नौकरी कर ली। और, पहली ही बार उसने हैट के नए डिजाइन बनाने का भार अपने ऊपर ले लिया। रोटी का मसला हल हो गया। जब भी समय मिलता, चार्ल्स, एडिसन द्वारा आविष्कृत विद्युत-संबंधी खोजों का अध्ययन किया करता था। उन दिनों स्वयं एडिसन भी बिजली की संभावित उपयोगिताओं से पूर्णतया परिचित न थे। शेष वैज्ञानिक तो इस प्रकार के काम को मात्र एक खिलवाड़ अथवा वैज्ञानिक मनोरंजन समझते थे।

टोप-फैक्टरी के मालिक का नाम था—ईकमेयर। प्रतिभा अपने विकास का मार्ग उसी प्रकार बना लेती है, जिस प्रकार नदी की वेगवती धारा

हहराती-घहराती, जंगलों पहाड़ों को पार करती हुई आगे निकल ही जाती है। चार्ल्स स्टीनमेट्स में जो प्रतिभा का चमत्कार था, वह पारखी ईकमेयर से छिपा न रहा। उसने देख लिया, ढेलों के बीच एक हीरा भी पड़ा है। उसने चार्ल्स को अपने पास बुला कर कहा, "तुम कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हो, यह बात मुझसे छिपी नहीं है। लेकिन, तुम काम के समय में भी, अपने निजी प्रयोग कर सकते हो। और, तुम्हारे सारे प्रयोग में जो कुछ खर्च होगा, उसका भार-वहन मैं करूँगा।"

"थैंक यू, सर!" चार्ल्स के मुख से निकला।

चार्ल्स स्टीनमेट्स के प्रयोगों के कारण ईकमेयर को अपार लाभ हुआ। एक हल्का-सा झोंका आया। राख उड़ गई, लोगों ने चिनगारी देख ली। पहले विपत्ति उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी थी, अब इस काम को संपदा ने ले लिया। अमरीका के उद्योगपतियों का दल महान चार्ल्स के पीछे-पीछे दौड़ने लगा। उस प्रकाश-पुंज को देख कर लोग स्तंभित रह गए। अमरीका के उद्योगपतियों ने लाखों डालर की मूल पूँजी से एक 'जनरल इलेक्ट्रिक' कंपनी की नींव डाली और चार्ल्स स्टीनमेट्स को पाने की लालच से, ईकमेयर को अपनी कंपनी का सर्वेसर्वा बना दिया। लेकिन, पारखी ईकमेयर को इस पदोन्नति से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसके साथ यही शर्त्त थी कि किसी प्रकार वह चार्ल्स स्टीनमेट्स को इस नवजात कंपनी का प्रधान इंजीनीयर बनने के लिए राजी कर ले।

अव्यवस्थित पोशाक, बढ़ी हुई दाढ़ी, साधारण-सा कोट, कंधे पर लटकते हुए बड़े-बड़े बिन-सँवारे बाल—फिर कूबड़दार पीठ! क्या यही व्यक्ति इतनी बड़ी वैज्ञानिक कंपनी का चीफ इंजीनीयर हो सकता है? कंपनी के एक हिस्से-

दार ने जब इस शक्ल के व्यक्ति को चीफ इंजीनीयर के रूप में देखा, तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। भीतर-ही-भीतर उस हिस्सेदार को कुछ निराशा भी हुई; क्योंकि चार्ल्स के इस सीधे-सादे व्यक्तित्व में विलक्षण प्रतिभा के कोई लक्षण नहीं थे। किंतु, कौन जानता था कि कुछ ही वर्षों के बाद इसी व्यक्ति को विद्युत-जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का श्रेय प्राप्त होनेवाला है ?

डी० सी० विद्युत की तैयारी !

उपयोगिता का क्षेत्र केवल दो-चार मील !!

उन दिनों विद्युत-वैज्ञानिकों की खोज यहीं तक सीमित थी। उत्पादन-विंदु से प्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा अधिक दूर ले जाने पर वह बेकार साबित होती थी। और, जिन लोगों ने ए० सी० विद्युत का निर्माण किया, उन्हें धोखा हुआ। लेने के देने पड़े। पूर्ण नियंत्रण का कोई प्रामाणिक साधन न होने के कारण उसका प्रयोग हमेशा खतरनाक था। कई वैज्ञानिक उसका प्रयोग करते समय उसके खतरनाक धक्के से बेहोश हो चुके थे। और, कुछ प्रयोग-कर्त्ताओं को ऐसा धक्का लगा कि वे सदा-सदा के लिए बेहोश हो गए। लेकिन, चार्ल्स स्टीनमेट्स ने अपनी प्रतिभा के प्रकाश से इस खतरनाक अंधकार को दूर कर दिया। ए० सी० के खतरे का भूत, जो समकालीन वैज्ञानिकों के सर पर सवार था, चार्ल्स ने उस भूत को मार भगाया। इतना ही नहीं, अपने प्रयोगों के द्वारा उसने वैज्ञानिकों को दिखला दिया कि यह प्रयोग आधुनिक गवेषणाओं में सर्वोच्च है। उसने विद्युत के एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया, जो ए० सी० विद्युत के वोल्टेज को पूर्ण नियंत्रत करने में अद्वितीय प्रमाणित हुआ। आज संसार का हर व्यक्ति, जिसे विद्युत का

अल्प ज्ञान भी है, इसे जानता है और इन सभी आविष्कारों का सारा श्रेय चार्ल्स को ही है। हाँ, चार्ल्स ने ट्रांसफार्मर' नामक भी एक यंत्र बनाया था, लेकिन उसके जीवन-काल में, उसके इस महान आविष्कार के लिए, उसे उचित सम्मान नहीं मिल सका।

सन् १९०३ ई० की बात है। चार्ल्स स्टीनमेट्स ने एक नया ट्रांसफार्मर बनाया, जो २,२०,००० वोल्टेज की विद्युत को पूर्ण नियंत्रण में रखता था। धीरे-धीरे वैज्ञानिकों की दुनिया में स्टीनमेट्स हवा की तरह फैल गया। बड़ी-बड़ी मशीनें चलने लगीं। अधिक शक्ति वाले कारखाने खुलने लगे। और आज, आज तो इसी स्टीनमेट्स के बनाये हुए ट्रांसफार्मर के आधार पर वैज्ञानिक ऐसे बड़े-बड़े और शक्तिशाली ट्रांसफार्मर बनाने लगे हैं कि उनसे करोड़ों वोल्ट की विद्युत-शक्ति को नियंत्रित किया जाता है।

किसी ने ठीक ही कहा है—

अपने को अपने-आप बनाते हैं अहले दिल,
हम वोह नहीं कि जिनको ज़माना बना गया।
मर्द वो हैं, जो ज़माने को बदल देते हैं।

इन बहुमूल्य सेवाओं के कारण कंपनी की ओर से चार्ल्स स्टीनमेट्स के वेतन में आशातीत वृद्धि की गई। संसार की अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्थाओं ने उसे अपना मनोतीत सदस्य बना कर, अपने को गौरवान्वित किया। लेकिन, चार्ल्स भी वास्तव में महान् था। असीम संपत्ति और वर्णानातीत ख्याति का धनी होने पर भी घमंड के मामले में बड़ा कंजूस रहा। उसे घमंड छू तक नहीं सका। होना भी यही चाहिए था। भरे घड़े में छलकाव कहाँ ?

इस अवस्था में भी अपनी गंभीरता के कारण चार्ल्स को भूखों मरने की नौबत आ गई। इसका कारण यह था कि कंपनी के वेतन-विभाग के एक किरानी की भूल के कारण, चार्ल्स को कई महीने तक वेतन नहीं मिला। और, चार्ल्स ऐसे सीधे कि इन्होंने किसी से इसकी चर्चा तक न की। अंत में, दूसरे व्यक्ति की जाँच-पड़ताल से यह समस्या हल की जा सकी।

चार्ल्स स्टीनमेट्स का स्वभाव बच्चों की तरह था। वह सबों से हँस-हँस कर बातें करता। उससे बातें करने वाला कभी भी ऊब नहीं पाता था। मिलने के लिए अतिथि आते, तो महान आश्चर्य साथ लेकर जाते—

दरवाजे को स्पर्श करते ही बिजली का धक्का !

कुर्सी पर बैठते-ही-बैठते बिजली का धक्का !!

यहाँ तक कि चार्ल्स से हाथ मिलाते वक्त भी बिजली का धक्का !!!

एक ओर तो सम्मानित अतिथियों की परेशानी बढ़ जाती और दूसरी ओर चार्ल्स ठहाके मार कर हँस पड़ता। वे भौंचके होकर चार्ल्स का मुँह देखने लगते। आखिर यह क्या तमाशा है ? इन धक्कों के लगने का एक ही रहस्य था। वह यह कि 'स्टेरिक' मशीन से निकलने वाली बिजली की हल्की लहरें, कमरे में रखी हुई धातु की प्रत्येक वस्तु में स्पर्श-मात्र से विद्युत की लहरें दौड़ा देती थीं।

एक रोज की बात है। चार्ल्स अपनी प्रयोगशाला में काम कर रहा था। चपरासी ने आकर सलाम किया और कहा, "एक सज्जन आपसे मिलना चाहते हैं। यह है, उनका वीजिटिंग कार्ड।"

चार्ल्स ने कार्ड पढ़ा। छपा था—टॉमस एडिसन। उसने चपरासी से कहा, "उन्हें ससम्मान भीतर ले आओ।"

एडिसन महोदय ससम्मान प्रयोगशाला में लाये गए। टॉमस एडिसन की अवस्था इस समय साठ को पार कर चुकी थी और वे बहरे हो गये थे। उनकी इच्छा थी कि वे चार्ल्स स्टीनमेट्स से उनकी प्रयोगशाला और उनके अनुसंधानों के बारे में घंटों वार्त्तालाप करें। किंतु, वहाँ तो दूसरा ही खेल हो रहा था। प्रयोगशाला के कोने-कोने में अदृश्य बिजली की लहरें दौड़ रही थीं। एकाएक चार्ल्स को यह बात याद आई कि टॉमस एडिसन को 'मोर्स-कोड' की पूरी जानकारी है। प्रसन्नता से चार्ल्स का चेहरा खिल उठा। चार्ल्स ने एडिसन को इशारा दिया। और, दोनों एक दूसरे के घुटनों को उँगलियों से ठकठका कर 'मोर्स-कोड' का अनुभव प्राप्त करने लगे।

पुरुषार्थ का पुजारी चार्ल्स स्टीनमेट्स असफलता की पीठ पर सवार हो चुका था। साहस और पुरुषार्थ के प्रकाश में असफलता दम तोड़ रही थी।

●

गणित का मदारी

"अपने परिचय के रूप में मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि मैं मद्रास के पोर्ट ट्रस्ट आफिस के एकाउण्ट्स-विभाग में बीस पौंड वार्षिक वेतन पानेवाला

एक क्लर्क हूँ। इस समय मेरी अवस्था तेईस साल की है। मैंने विश्वविद्यालय की कोई भी उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त की है। स्कूल के मामूली पाठ्य-क्रम को ही पूरा करने का अवसर मिला है। स्कूल छोड़ने के बाद के सारे समय को मैं गणित-शोध के कार्य में लगा रहा हूँ। मगर, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अपने लिए एक नया मार्ग बना रहा हूँ। मैंने इधर जो गणित-संबंधी खोजें की हैं, उन्हें यहाँ के गण्यमान गणितज्ञों ने आश्चर्यजनक कार्य बतलाया है।

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पत्र के साथ संलग्न सभी कागजातों को पढ़ने का कष्ट करें। यदि आपको मेरे कामों में कुछ तत्त्व जान पड़े, तो अनुभव का अभाव होते हुए भी मैं चाहूँगा कि उनका प्रकाशन हो।

और, इनके लिए यदि आपका कोई सत्परामर्श मिला, तो उसके लिए चिर कृतज्ञ रहूँगा ।"

"यदि प्रारंभ में ही उनकी प्रतिभा की पहचान की गई होती और उन्हें इस विषय की क्रमिक-शिक्षा पाने का अवसर मिला होता, तो संभवतः वे इससे भी महान गणितज्ञ प्रमाणित होते। तब अवश्य ही उन्होंने गणित-विज्ञान में और नए अनुसंधान किया होता और उनका और भी विशेष महत्त्व होता। लेकिन, साथ ही वे रामानुजम् कम होते और तब एक युरोपियन प्रोफेसर का, ज्यादा तथा लाभ की अपेक्षा घाटे का पलड़ा ही भारी पड़ता।"—प्रोफेसर हार्डी।

मद्रास के किसी स्कूल में बच्चों को शिक्षक पढ़ा रहे थे। शिक्षक ने बच्चों को समझाते हुए कहा, "जब किसी संख्या को उसी संख्या से भाग देते हैं, तब भागफल हमेशा एक रहता है।"

लेकिन, तभी तक चमकती हुई आँखोंवाला एक लड़का, अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ। उसने शिक्षक से पूछा, "सर, अगर शून्य में शून्य से भाग दें तो?"

शिक्षक अपने छात्र का मुख देखते रह गए!

जो महान पुरुष संसार को कुछ देने के लिए जन्म लेते हैं, वे संसार से कुछ लेकर नहीं जाते। और, शायद इसीलिए अपना देने का काम समाप्त करके, वे यहाँ से शीघ्र ही चल देते हैं। २२ दिसंबर, १८८७ ई० को गणित-जगत में एक गणित के जादूगर का जन्म हुआ। आयंगर ब्राह्मण-परिवार में उसने जन्म लिया और उसका नाम पड़ा—श्रीनिवास रामानुजम्। घर की आर्थिक दशा बिलकुल ही दयनीय थी। आफिस में बीस रुपये

माहवार पर किरानी थे। माता अत्यंत धर्मपरायण थीं। पाँच वर्ष की अवस्था में ही रामानुजम् ने प्रारंभिक शिक्षा पूरी कर ली और सात वर्ष की अवस्था में उन्हें कुंभकोनम् के हाई स्कूल में भरती करा दिया गया। गणित पर तो जादूगरी हासिल थी ही, जब यह व्यक्ति तीसरे दर्जे का विद्यार्थी था; तब अपने साथियों को पाई का मान, दो का वर्गमूल और दशमलव की मनचाही संख्या खटाखट बतला कर, उन्हें आश्चर्य में डाल देता था। पंद्रह वर्ष की अवस्था में गणित के इस मदारी को कार की 'सिनॉप्सीस ऑफ प्यूर मैथेमेटिक्स' मिल गई। उसे जैसे आकाश के तारे मिल गए। वह उनके कठिन सवालों को हल करता। गणित की नई-नई पहेलियाँ बनाना उसका व्यसन हो गया था। सोलह वष की अवस्था में रामानुजम् ने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली, फिर कॉलेज में पैर रखे। किंतु, अंग्रेजी अथवा अन्य साहित्यिक विषयों की ओर झुकाव न होने के कारण, कॉलेज की पाठ्य-क्रम वाली परीक्षा में सफल होना कठिन काम था। दुबारे एफ० ए० की परीक्षा दी, लेकिन फिर असफलता हाथ लगी। कॉलेज के पाठ्य-क्रम से भी मन ऊब गया, तो कॉलेज जाने से मुख मोड़ लिया। अब घर ही पर रह कर गणित-संबंधी सूत्रों की खोज होने लगी। गरीबी तो जैसे जीवन-संगिनी हो गई थी। लेकिन, जादूगर अपने जादुओं से खेलता रहा, गणित शोध के रिक्त भांडार को भरता रहा। सूरज के प्रति कोई कृतज्ञ हो अथवा नहीं, लेकिन सूरज तो संसार को निरंतर अपना प्रकाश देता रहता है। उस समय रामानुजम् को पहचानने वाला कोई नहीं था, उत्साह देने वाला कोई नहीं था, मगर वे शोध-कार्य में लगे रहे। महान व्यक्ति अपनी सफलता के लिए मर-मिटते हैं, अपनी कमजोरी छिपाने के लिए समाज को ढाल नहीं बनाते। यह तो समय बतलाता है कि समाज, मानव-समाज, जो अपने को संसार के

समस्त प्राणियों में सर्वाधिक सभ्य घोषित किये हुए हैं, महान आत्माओं की परख करने में, कितना पिछड़ा हुआ है।

सन् १९०९ ई० में रामानुजम् का व्याह हो गया। गरीबी और बेरोजगारी के दिनों में पत्नी का भार ऊपर से आ पड़ा। प्रतिभा ने भीतर-ही-भीतर सभ्य समाज को धिक्कारा और रोटी की समस्या हल करने के लिए रामानुजम् नौकरी की तलाश में लग गए। समाज ने कहा, "दासता स्वीकार करो। जिंदगी भर महरूमी और मायूसी का बोझ ढोते रहो, हम तो मरने पर तुम्हारी खोज करेंगे।"

नेलौर के कलक्टर, दीवान बहादुर का भतीजा दौड़ता हुआ अपने चाचा के पास आया। भतीजे को घबड़ाया हुआ देखकर उन्होंने पूछा, "क्या है, घबड़ाए हुए क्यों हो?"

उत्तर मिला, "चाचाजी, एक नवयुवक आया है। आपसे मिलना चाहता है। और हाँ, न जानें गणित की भाषा में वह क्या-क्या बोल रहा है।"

"जाओ, उसे मेरे पास ले आओ।"

नाटा कद, दोहरा बदन और अनाकर्षक व्यक्तित्व वाला एक युवक दीवान बहादुर रामचंद्रराव के सामने आकर खड़ा हो गया। यह युवक कोई और नहीं, यह थे रामानुजम्। दीवान बहादुर रामचंद्रराव गणित के बड़े प्रेमी थे। और, रामानुजम् उनके पास शेषु आयर का एक परिचय-पत्र लेकर आए थे। दीवान बहादुर रामचंद्रराव ने देखा, युवक में विलक्षण प्रतिभा का प्रकाश है। उन्होंने मीठे स्वर में पूछा, "कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

उत्तर में रामानुजम् ने दो नोट-बुक उनके सामने रख दिये और अपने गणित-संबंधी शोध-कार्यों को उन्हें समझाने लगे। लेकिन, दीवान बहादुर रामचंद्रराव उनके ऊँचे शोध-कार्य को समझ न सके। परंतु, उन्हें इतना विश्वास अवश्य हो गया कि युवक होनहार और गणित-विज्ञान को बहुत कुछ देनेवाला है।

इस भेंट के उपरांत वे रामानुजम् से अनेकों बार मिले और व्यक्तिगत तौर से उन्हें आर्थिक सहायता भी देते रहे।

लेकिन, समाज ने कहा, "दासता को स्वीकार करो, वरना हम तुम्हें जीने न देंगे।"

एक ओर गरीब परिवार की जिम्मेवारी, दूसरी ओर अपने को जीवित रख कर गणित में महानतम शोध करने की प्रतिज्ञा ! हठात् सन् १६१२ ई० में पोर्ट ट्रस्ट के एकाउंटस् विभाग में किरानीगिरी स्वीकार कर लेनी पड़ी। लेकिन, कठिन परिस्थितियों से समझौता करके रामानुजम् ने अपनी प्रतिभा को धोखा नहीं दिया। संघर्षों के पत्थर से उन्होंने प्रतिभा की धार पर शान चढ़ाई। रामानुजम् केवल कहलाने को किरानी थे, मगर यहाँ पहुँच कर वे बड़े-बड़े गणितज्ञों के संपर्क में रहने लगे। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के चेयरमैन फ्रांसिस स्प्रिंग और डाक्टर वॉकर ने सर्वप्रथम उनकी प्रतिभा को पहचाना। यह वह युग था, जब अंग्रेज जाति हिंदुस्तानियों को हर अर्थ में अपने से नीचा समझती थी। लेकिन, इन दोनों व्यक्तियों के सहयोग और सिफारिश से ही रामानुजम् को वाधा-विमुक्ति मिली। शोध-कार्य के लिए रामानुजम् को अब मद्रास विश्वविद्यालय से पचहत्तर रुपए प्रति मास मिलने लगे। यह ठीक है कि इतने बड़े शोध-कार्य के लिए इतनी धन-राशि पर्याप्त

नहीं थी, फिर भी तत्क्षण साधन की छोटी-सी उपलब्धि से रामानुजम् को संतोष हुआ। वे तो सुख भोगनेवाले नहीं, वे तो साधक थे—अपने शोध-कार्यों से गणित-जगत् को चकाचौंध में डाल देनेवाले !

१६ जनवरी, १९१३ ई० !

गणित-ज्ञान के इतिहास की महत्त्वपूर्ण तिथि !!

रामानुजम् ने साहस बटोरकर अपने शोध-कार्य के सभी कागजात एकत्र किए और उनके नाम एक पत्र के साथ गणिताचार्य प्रो० जी० एच० हार्डी के पास भेज दिया। दिल धक्-धक् कर रहा था। शायद प्रोफेसर हार्डी उन कागजातों पर कुछ ध्यान न दें। लेकिन, हार्डी को रामानुजम् के शोध-कार्य बहुत ही पसंद आए और उन्होंने एक प्रेमपूर्ण पत्र के द्वारा रामानुजम् को कैंब्रिज आने के लिए आमंत्रित किया।

इन्हीं दिनों की बात है। प्रोफेसर एफ० एच० नैविल मद्रास आए और उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय के सामने जोरदार शब्दों में सिफारिश की, कि रामानुजम् को गणित के शोध-कार्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान की जायँ। प्रारंभ में जो पत्र दिया गया है, उसे रामानुजम् ने प्रो० हार्डी के पास लिखा था। और, उसके बाद प्रो० हार्डी के वे उद्गार दिये गए हैं, जिन्हें उन्होंने रामानुजम् के महान् कार्य को देख कर प्रकट किया था। रामानुजम् के कार्यों को देख कर प्रोफेसर नैविल ने जो पत्र मद्रास विश्व-विद्यालय के नाम लिखा था, उसका संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है। उन्होंने लिखा था—

"....सबसे बड़ी बात तो यह है कि श्री रामानुजम् की प्रतिभा का आविष्कार गणितज्ञ-संसार के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। फिर

भी इस बात की आवश्यकता है कि रामानुजम् उनलोगों के संपर्क में सक्रिय रूप से आवें, जो गणित-संबंधी शोध-कार्य कर रहे हैं। रामानुजम् के लिए यह भी जरूरी है कि वे उन संस्थाओं से अपना घनिष्ठ संबंध स्थापित करें, जो गणित की आधुनिक एवं विकसित पद्धतियों पर मौलिक खोज-कार्य कर रही हैं। मेरा विश्वास है कि अपनी प्रतिभा के बल पर रामानुजम् पश्चिम के सभी मूर्द्धन्य गणितज्ञों का हार्दिक सहयोग पा लेने में सफल होंगे। और, तब वह वक्त आएगा, जब रामानुजम् का नाम गणित-संसार की महानतम विभूतियों में आदरपूर्वक लिया जाने लगेगा और मद्रास विश्वविद्यालय को भी इस बात का गर्व प्राप्त होगा कि उसने एक अप्रकट गणित-विभूति को कीर्त्ति-पथ तक पहुँचाने में अपना बौद्धिक एवं आर्थिक सहयोग दिया है।''

अप्रैल सन् १९१४ ई० में रामानुजम् इंगलैंड गए। वहाँ जाने का मौका मद्रास विश्वविद्यालय ने दिया। मद्रास विश्वविद्यालय ने उन्हें छात्रवृत्ति दी और माता ने आशीर्वाद दिये। इंगलैंड के प्रसिद्ध गणितज्ञों के बीच रामानुजम् ने अपनी महान ज्ञान-ज्योति का प्रकाश फैलाया। इन्होंने कॉलेज की कोई ऊँची शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। गणित-शोधशालाओं में काम नहीं किया था। इन्होंने जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में गणित की कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी। लेकिन, इंगलैंड के गणितज्ञ रामानुजम् और उनकी प्रतिभा को अपने बीच पाकर, दंग और धन्य थे। कौन कहता है कि अंग्रेज जाति दूसरे देश के लोगों को केवल असभ्य समझती है? भला, उनकी तरह की गुण-ग्राहकता किस जाति में होगी? रामानुजम् के ज्ञान-विकास के लिए सबसे पहले इसी जाति ने तो उनका मार्ग प्रशस्त किया।

इंगलैंड आकर रामानुजम् ने अपनी मेधा का वह परिचय दिया कि स्वयं प्रो० हार्डी स्तंभित रह गए। बीजगणित के सूत्रों और 'असीम श्रेणियों' में उन्हें कुछ ऐसी गति प्राप्त थी कि गणितज्ञ दाँतों तले उँगलियाँ दबाते थे। इतना ही नहीं, भागीकरण के अनेक सिद्धांत रामानुजम् की मौलिक देन हैं। उनके कार्यों से प्रसन्न होकर प्रो० हार्डी ने उनकी तुलना यूरोप के प्रसिद्ध गणितज्ञ ऑयलर और जेकोबी से की।

२८ फरवरी, १९१८ ई० !

भारतीय ज्ञान-गौरव के इतिहास का स्वर्ण-पृष्ठ !!

इसी दिन रामानुजम् ने समुद्रों के उस पार भारत का नाम उज्ज्वल किया। इसी रोज उन्हें रायल सोसाइटी की मनोनीत सदस्यता मिली। उन्हें एफ० आर० एस० का महान गौरव दिया गया। इन्हीं दिनों वे फेलो ऑफ ट्रिनिटी कालेज, कैंब्रिज, बनाये गए। लेकिन, कौन जानता था कि अधिक प्रकाश देने वाले दीप का तेल समाप्त हो रहा है। ज्ञान-विज्ञान की खोज में रामानुजम् अपने स्वास्थ्य को खो रहे थे। वे अपने प्राणों की आहुति देकर गणित-संसार के प्रकाश को द्विगुणित कर रहे थे।

सन् १९१७ ई० के बसंत में रामानुजम् अत्यधिक अस्वस्थ हो गए। सफलता के साथ-साथ यक्ष्मा रोग भी आया। अब वह वक्त आया था, जब संसार उनकी पूजा करता, उनके शोध-कार्यों का उचित मूल्यांकन करता। लेकिन सूरज संसार को प्रकाश देता है, संसार से लेता कुछ नहीं है। चाँद सबों को अपनी शीतल छाया देता है, मगर किसी से लेता क्या है? रामनुजम् लेने नहीं, देने आए थे।

यक्ष्मा ने रामानुजम् को खाट पकड़ने के लिए विवश कर दिया। समय-समय पर वे रक्त-वमन करने लगे। इन दिनों वे इंगलैंड में ही एक नर्सिंग होम में भरती थे। प्रो० हार्डी अपने प्यारे गणितज्ञ से मिलने गए। उनकी टैक्सी का नम्बर था–१७२६। हार्डी ने रामानुजम् से कहा, "यह बिलकुल भोंड़ी संख्या है, मि० रामानुजम्!" लेकिन, रामानुजम् की आँख में एक प्रकार की तेज ज्योति फैल गई। उन्होंने रुग्नावस्था में भी मुस्कुरा कर कहा, "नहीं, मि० हार्डी! यह तो विचित्र ही संख्या है। यह सबसे छोटी संख्या है, जो दो तरह से दो घनों के जोड़ के बराबर है—

$$(१७२९ = १२^{3} + १^{3})$$
$$(१७२९ = १०^{3} + ९^{3})$$

रामानुजम् अंकों के ऐसे महान मदारी थे कि प्रोफेसर लिटिल वुड ने एक बार कहा था—"१०,००० तक कोई भी संख्या उनकी व्यक्तिगत दोस्त थी और वे उन संख्याओं के साथ वैसा ही ज्ञानशील खेल खेलते थे, जैसा कि एक अबोध शिशु गेंद के साथ खेला करता है।"

भारी-से-भारी संख्या के साथ खेलनेवाला मदारी मृत्यु की बाहों के साथ उलझने लगा था। संघर्ष करते-करते महान आत्मा की बाहें शिथिल पड़ती जा रही थीं। मृत्यु की बाहें जबर्दस्त थीं। दमित भावनाएँ, अपने शब्द भयानक रोग के होठों से व्यक्त कर रही थीं। आविष्कारक के प्राणों का जहाज डूबना चाहता था....कल-पुर्जे जवाब दे रहे थे।

और, वह था कि अपने प्राणों को गणित के फॉमूलों में बाँधने को तैयार था, हर घड़ी। कौन डॉक्टर कहता है कि मन का असर शरीर पर नहीं होता? शायद कोई अनुभवी डॉक्टर ऐसा नहीं कहेगा; क्योंकि जब हम क्रोधित होते हैं, तब हमारे रूप-रंग क्यों बदल जाते हैं? हमारी

आँखें क्यों लाल हो आती हैं, हमारी नसों में तनाव क्यों पैदा होने लगता है ? क्या समाज इस सचाई से मुँह छिपा सकेगा कि निरंतर संघष के थपेड़ों ने ही उस महान आविष्कारक को विवश किया कि वह अपनी घुटन का सारा बोझ अपने फेफड़ों पर लाद दे ?

प्रकाश लूटनेवालों का कारवाँ, प्रकाश लूटने के लिए आगे बढ़ा आ रहा था। मगर, इस लूट-कार्य में शामिल होने से पहले किसने यह सोचा कि उस दीपक को पर्याप्त तेल और एक छोटी-सी लकड़ी चाहिए, जो उसे चिरकाल तक जलने दे, जो उसकी बाती को जरा ऊपर की ओर खिसकाती रहे ?

इसीलिए तो भगवान भी मनुष्य से अपने को छिपाए हुए है कि प्रकट होते हो लोग उसे नोचने-खसोटने लगेंगे। अरे, इस जगत में मनुष्य से अधिक स्वार्थी प्राणी कौन होगा ?

कैलेंडर नित नई तारीखें बतलाता रहा, घड़ी की सुइयाँ मिनट और घंटे की ओर खिसकती रहीं और रामानुजम् गणित-जगत के विकास के क्षण-क्षण के अंतिम हिसाब देते रहे।

अफसोस, रामानुजम् इंगलैंड में अच्छे न हो सके। वे मृत्यु-शैय्या पर पड़े-पड़े गणित के जटिल प्रश्न हल करते रहे। सामुद्रिक रास्ते से वे अपने वतन के लिए चल पड़े। बंदरगाह पर खड़े पश्चिम के गणितज्ञों ने भरे हृदय से उन्हें सलाम किया। आखिर अपनी जन्मभूमि मद्रास में आकर २६ अप्रैल १९२० ई० को रामानुजम् का महाप्रयाण हो गया। जिस समय उन्होंने जिंदगी की अंतिम साँस ली, उस समय उनकी उम्र थी—तैंतीस साल, चार माह और पाँच दिन।

उनके शोध-कार्य, जिंदाबाद ! महान् रामानुजम्, जिंदाबाद !!

वह मधुर कंठ : वे अमर छंद

पूरब के आकाश में किसी चित्रकार ने गुलाबी रंग छिड़क दिया है। क्षितिज का एक छोटा-सा भाग गुलाब-सा लाल होता दिखलाई पड़ रहा! मगर, ऐसा लगता है कि चित्रकार नवसिखुआ नहीं; क्योंकि रंग के छिड़काव में अल्हड़पन नहीं है। लगता है, उस गुलाबी रंग के आवरण से कुछ निकलने वाला है। गुलाबी रंग धीरे-धीरे फटने लगा। बीच से कोई रश्मि-पुंज बाहर निकलना चाहता है। पूरब से लाल-गोल, मानो सुमणि अमोल! और? और, धीर-वीर सैनिक ज्यों आँख मलमला रहा। तो क्या है, वह?

डेक पर खड़े, पूरब की ओर एक टक निहारते हुए उस व्यक्ति के हृदय ने कहा, "अहा, वह नवार्क आ रहा!"

उसने पास खड़े अपने व्यापारी मित्र का हाथ पकड़ कर कहा, "वह देखो मित्र! वह सूर्य अपनी सतरंगी किरणें फेंक कर प्रकृति की नैसर्गिक शोभा को चूमना चाहता है। देखो तो सही, कैसा हृदयहारी दृश्य है!"

व्यापारी ने उठ कर पूरवाकाश की ओर देखा। सूर्योदय हो रहा था। उसने कहा, "हाँ, सूर्योदय हो रहा है। बड़ा ही मनभावन दृश्य है।"

"देखो तो, बाल-रवि की आँखों में कैसे शोभन संदेश हैं, मित्र !"

व्यापारी मुस्कुरा पड़ा। अपने मित्र की भाँति इस दृश्य की प्रशंसा करने के लिए उसके पास अभिव्यक्ति का पर्याप्त माध्यम नहीं था। देखते सभी हैं, परखते बहुत कम हैं। परख करके भी बहुत कम व्यक्ति कह पाते हैं, क्या और कैसा है ?

जहाज के पहिए सागर के विशाल वक्ष को चीर रहे थे। चारों ओर नीलाकाश ! नीली जल-राशि !! जहाज के शेष यात्री अपने-अपने में मशगूल थे। कुछ लोग चाय पी रहे थे, कुछ नाश्ता कर रहे थे, कुछ शैम्पेन की बोतल के कॉर्क उड़ा रहे थे। भयानक सर्दी जो थी। मगर, जीवन-यात्रा में विश्राम कहाँ ? शायद इसीलिए सागर निरंतर लहरा रहा था। सूर्य के निकलते हुए दृश्य को देखकर केवल एक व्यक्ति आह्लादित था। और, वह था—नदी-पुत्र !

नदी-पुत्र कौन ? नदी के भी पुत्र होता है ? हाँ, वह नदी का पुत्र था। अपने युग का महान कवि—होमर ! वर्जिल, दाँते, गेटे और मिल्टन के टक्कर का कवि ! यदि हम यूरोप के पाँच महाकाव्यों के प्रणेताओं के नाम लें, तो हमें पहले होमर का ही नाम लेना होगा। किन्तु, पाँचो महान थे। साहित्य-रसिकों को इन सबों ने अपनी प्रतिभा का प्रसाद दिया। पाँचों ने साहित्य-संसार को सदा-सदा के लिए ऋणी बना दिया। ये पाँचों कवि पाश्चात्य-जगत के रससिद्ध कवीश्वर हैं। बाद का सारा पाश्चात्य काव्य-साहित्य मूलतः इन्हीं पाँच रस-स्रोतों का ऋणी है। प्रेम और सौंदर्य के दो तटों में

अजस्र बहनेवाली मनुष्य की जीवनानुभूति के जो मर्मस्पर्शी चित्र इन महा-काव्यों में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं, वे स्पष्ट करते हैं कि जीव मात्र एक ही चिरंतन सत्य—परम चैतन्य—में बँधा हुआ है और एक ही हृदय सर्वत्र अपनी धड़कनें ध्वनित करता है।

और इस तरह, संपूर्ण हृदय की धड़कनों को काव्यरूपी सितार के तारों से ध्वनित करनेवाला हमारा यह महान कवि अंधा भी था। परंतु, जन्मान्ध नहीं।

कवि की माँ साधारण माँ-बाप की बेटी थीं। छुटपन में ही दुर्भाग्य ने उसके भविष्य के चारों ओर घेरे डाल दिए। कवि की माँ के माता-पिता परलोक सिधारे। वह जवान होने लगी और समय ने भी उसे जवान बना दिया। पुरुष हमेशा नारियों के शरीर के साथ खेलता रहा है। पुरुष ने अपनी वासना-सिद्धि के लिए युग-युग से नारियों के आगे लाखों कसमें खायी हैं—जीवन भर साथ दूँगा, जब तक सूरज-चाँद चमकेंगे, मैं तुम्हारा साथ न छोड़ूँगा।

कवि की माँ को भी किसी वासना के पुजारी ने इसी प्रकार छकाया। फलतः, जब वह कुमारी थी, वह माता बन गई। फिर कोई पुरुष सामने न आया; जो यह स्वीकार करता कि इन दोनों का रक्षक मैं हूँ—यह स्त्री मेरी है, इस संतान का पिता मैं ही हूँ। समाज ने कवि की माँ को बहुत ठुकराया। अंत में, एक स्कूल-मास्टर ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। वह बालक उसका उत्तराधिकारी हुआ। तब होमर का नाम था—मेलि-सिग्नी—यानी मेल नदी का पुत्र!

दुर्भाग्य ने फिर अपना घेरा बढ़ाया। होमर की माँ की मृत्यु हो गई। कुछ रोज बाद अध्यापक भी चल बसा। अब तक होमर बड़ा हो चुका था।

मगर पहाड़-जैसा भविष्य गुजारने के लिए उसके सामने और कोई चारा न था। उसने अध्यापक का पेशा अपनाया। बच्चे उससे हिल-मिल गए। पाठशाला चल निकली। होमर की प्रशंसा होने लगी। वह बच्चों के साथ बच्चा बन जाता। शायद बिना अधिक पढ़े-लिखे भी वह बाल-मनोविज्ञान का आचार्य था। संपन्न परिवार के लड़के उसके स्कूल में भरती होने लगे। मगर, होमर अपने मन में एक अभाव महसूस कर रहा था। उसने देश-विदेश के लोगों के बारे में बहुत कुछ सुना था। पुस्तकों में उनके रीति-रिवाज के बारे में पढ़ा था, उनकी विभिन्न संस्कृतियों को जाना-सुना था। वह चाहता था कि देश-विदेश घूम कर वह स्वयं सब कुछ देखे। व्यापक अनुभूतियों के लिए तो प्रत्यक्ष दर्शन आवश्यक है। आँखों की राह इसीलिए तो है कि अनुभूति उस राह से हृदय में उतरे। सुनील जल का स्रोत आँखों की राह जब हृदय के कुंड तक पहुँचता है, तब आत्मा सी प्यास बुझती है, मन-मयूर के पंख छितनार हो उठते हैं, अनुभूति के लय शब्दों के संगीत पर ध्वनित-तरंगित होने लगते हैं।

इन्हीं दिनों कवि का परिचय एक ऐसे व्यापारी से हुआ, जो देश-विदेश जाकर अपने व्यापार की देख-रेख करता था। था तो वह लक्ष्मी-पुत्र; किंतु उसने होमर-जैसे प्रतिभा-पुत्र से परिचय किया; उसके काव्य से अपने शुष्क हृदय को आप्लावित किया और तभी कवि ने उससे अपनी यह अभिलाषा व्यक्त की। कहा, "मैं अनेक जगह घूम कर वहाँ के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी चाहता हूँ। सुना है, दुनिया में और भी बहुत-से लोग हैं। उनके भाव और विचार भी हमसे मिलते हैं। क्या आप मुझे अपने साथ यात्रा करने का सुअवसर दे सकेंगे, श्रीमान् ?"

"क्या सचमुच तुम घूमना चाहते हो?" व्यापारी ने पूछा ।

"हाँ, श्रीमान् ।"

"तो चलो मेरे साथ ।" व्यापारी बोला ।

और, कवि उस व्यापारी के साथ हो लिया । उसने समुद्र की बर्फीली हवा का अनुभव किया । उसने मुक्त आकाश में नटखट बादलों को शरारत करते देखा, अथाह जल-राशि के भीतर चाँद को नृत्य करते पाया । छलिया चाँद, सागर की लहरों को भला किस सफाई से छल रहा था ! लहरों की बाहें फैला कर, चाँद को, सागर अपने में समेट लेना चाहता था । इस प्रकार प्रकृति के सौंदर्य को देखते हुए, विभिन्न स्थानों के लोगों की वेश-भूषा, रीति-रिवाज, भाषा और व्यवहार से परिचित होते हुए कवि एक नगर में पहुँच गया । इस नगर का नाम था—इथाका ।

यहाँ आकर कवि की आँखों में मर्मान्तक पीड़ा होने लगी । पहले आँखें लाल हो आईं, फिर उनका रंग और गाढ़ा हुआ । दर्द बढ़ता गया । व्यापारी मित्र ने चाहा कि कवि की पीड़ा शीघ्र समाप्त हो जाए । उसने कवि की चिकित्सा का समुचित प्रबंध कराया । जब यह पता चला कि आँखों का यह रोग अभी बहुत समय लेगा तब वह कवि को अपने एक अभिन्न मित्र के यहाँ छोड़ कर व्यापार सँभालने चला गया । जाते समय वह अपने मित्र को इस बात की हिदायत कर गया था कि कवि की चिकित्सा में किसी प्रकार की कमी न होने पावे ।

परंतु, परंतु ईश्वर को यह मंजूर न था । उसने कवि की आँखें छीन लीं । उसने कवि से दीखनेवाले नेत्र छीन लिये और बदले में प्रतिभा का अक्षय प्रकाश-पुंज दे दिया । अब उसका नाम पड़ा—होमर । होमर का

अर्थ है—अंधा। और, परमेश्वर ने उसे जो प्रतिभा का अक्षय प्रकाश-पुंज दिया था, वह उसके दो अमर महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडेसी' में फूट पड़ा। यूरोप का साहित्याकाश चमत्कृत-विस्मित हो उठा। उसके मधुर कंठ ने अमर छंदों का निर्माण किया। लिख तो नहीं सकता था, मगर उसने केवल हृदय में सोचकर, और कंठ से उन्हें ध्वनित कर, प्रेम और सौंदर्य का विश्लेषण किया। पहले उसने 'यूलिसिस' की कथा को छंदों में बाँधा और लगा उसे मधुर कंठ से ध्वनित करने। मगर कौन था, इस अमर कवि की प्रतिभा को पहचाननेवाला? केवल अपना पेट पालना भी उसके लिए असंभव था। वह तो सड़कों पर, टोले में, बाजारों में, अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए अपने मधुर कंठ के स्वर-पात्र से काव्य का अमृत बाँटता फिरता। निश्चय ही, आज की तरह, तब साहित्य साहित्यकारों की रोजी-रोटी का माध्यम नहीं था। और, इन पंक्तियों के लेखक को तभी ऐसा अनुभव होता है कि उन दिनों देश विदेश में ऐसे महान साहित्य-सूर्य का अवतरण हुआ।

प्रतिभा-पुत्रों के साथ भाग्य की यह कैसी विंडबना होती है, प्रकृति उनके साथ कैसे गहरे मजाक करती है कि दुनिया के बीच अमृत बाँटने-वाला स्वयं भूख के मारे अपना वजन सँभाल नहीं पाता और लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। काव्य के सितार ने कहा, "अंतड़ियों को भोजन दो। अगर वे ऐंठ कर टूट गईं, तो भला मेरे तारों को कौन सँभालेगा?"

कवि ने उससे कहा, "मैं तो साधक हूँ, मैं तेरे लिए सब कुछ करूँगा। मैं भूखों रहूँगा, किंतु तेरे तार मेरे सुर से विपरीत न होंगे।"

काव्य के सितार ने झनझना कर कहा, "ये तेरे विचार हैं, जनमत नहीं।"

सचमुच, कुछ ही रोज में कवि को भूखों मरने की नौबत आ गई। शहर छोड़ कर भागा वह एक कस्बे की ओर। वहाँ एक मोची ने उसे शरण दी। उसने कहा, "मैं तुम्हें अपने यहाँ रखूँगा। तुम मेरे घर में खा लिया करो।"

दो-चार रोज बीतने पर होमर ने सोचा—पराये का अन्न कब तक खाया जाए? फिर क्या था, वह दूकान के बरामदे में शाम को बैठ जाता। हारे-थके मजदूर जुटते। होमर अपने सरल-सुमधुर कंठ से काव्यामृत बाँटना शुरू करता। श्रोतागण मस्त हो उठते। उनका मनोरंजन होता। बदले में वे उसे (होमर को) भोजन की सामग्री दे देते। इस प्रकार मात्र अपना पेट पालने के लिए उस युग में महान कवि को घंटों अपना गला फाड़ना पड़ता। आज का साहित्यकार साधारण से दुःख में तिलमिला उठता है, अपने कष्टों का विज्ञापन कराता है, अपनी साधना की अनुचित पोस्टरबाजी कराता है, वर्त्तमान व्यवस्था और सरकार को गालियाँ सुनाता है। और, उनकी जो कुछ तथाकथित महान (?) रचनाएँ हैं, जरा उन्हें देखिए। उनमें कुछ नहीं पाने पर भी वे हमें इसके लिए मजबूर करेंगे कि हम उनमें कोई खास विशेषता अवश्य पा लें। स्वयं प्रभावित न कर सके, तो चाय-पान-सिगरेट मार्का आलोचकों से लिखवाया।

खैर, छोड़िए इन्हें। हम तो होमर की चर्चा कर रहे थे।

'कुमे' नामक नगर। दोपहर का वक्त है। काउंसिल के विशाल बरामदे में बैठा 'इलियड' और 'ओडेसी'-जैसे महाकाव्यों का रचयिता प्रतिनिधियों के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है। इथाका, के पास के कस्बे से भी उसे भागना पड़ा! रोज एक ही प्रकार का गीत जनता कैसे सुनती? जनता का मन

ऊब उठा। लोगों में अरुचि उत्पन्न हो गई। यहाँ भी रोटी के लाले पड़ने लगे। लोग ऊबने लगे–"ओह, यह तो एक ही चीज रोज सुनाता है। इसे सुनते-सुनते तो कान पक गए।"

एक मर्माहत वेदना से कवि का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता। वह कैसे कहता, "तुमलोग अपने में मेरे गीतों को समझने का ज्ञान पैदा करो।"

वह अंधा जो था। और, अब 'कुमे' आकर उसने रिप्रेजेंटेटिव्स ऑफ काउंसिल के आगे यह प्रस्ताव रखा था, "मेरे लिए ऐसी व्यवस्था की जाय कि लोग मेरे लिए भोजन और वस्त्र का प्रबंध कर दें और मैं लोगों को रोज अपने गीत सुनाता रहूँ।"

काउंसिल में इसी प्रस्ताव पर बहस हो रही थी। किसी टेबुल से पक्ष में आवाज आती, किसी टेबुल से विपक्ष में। समर्थक दल कहता, "ऐसी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया गया, तो एक महान प्रतिभाशाली कवि की मृत्यु के जिम्मेवार हम होंगे। काउंसिल का यह पहला कर्त्तव्य है कि·······।"

तभी विरोधी दल की ओर से आवाज आती, "नहीं, ऐसा करना कदापि उचित नहीं। काउंसिल अकर्मण्य और अपाहिजों का ठेका नहीं ले सकती। अगर होमर के लिए यह व्यवस्था हो सकती है, तो कुमे के हर अपाहिज और अकर्मण्य व्यक्ति के लिए काउंसिल को ही जिम्मेवार होना पड़ेगा।"

होमर का समर्थक दल कहता, "होमर साधारण अपाहिजों में नहीं है। हमें खेद है कि काउंसिल उसे साधारण लोगों में एक समझती है।"

बाहर बैठे हुए होमर के कानों में विभिन्न प्रकार के स्वर तैर रहे थे। और अंतिम फैसला क्या हुआ? अंतिम फैसला होमर के प्रस्ताव के विरुद्ध

हुआ। उसका सर झनझना गया। वह माथा पकड़ कर धीरे-धीरे उठा और चल पड़ा सड़कों पर अपने गीत लुटाने के लिए। समाज ने उसे नि:सहाय छोड़ दिया। आज का यूरोप, आज का साहित्य-संसार उसके भाव-विश्व का ऋणी है। था तो तब भी, मगर समाज ने उसे पहचाना नहीं।

उसकी आँखें जो नहीं थीं। उसकी इसी विवशता से कई प्रतिभाहीन व्यक्तियों ने उससे लाभ भी उठाया। प्रतिभा का दारिद्रय स्वीकार करने के बदले, लोगों ने, उसकी कविताएँ लिख लीं और उसे स्वरचित रचना बतलाने लगे। कवि के साथ धोखा किया। मगर इससे क्या ? उसका ज्ञान-चक्षु तो नहीं समाप्त हुआ था।

प्रतिभा-पुत्र को पता लगा। एक सज्जन उसकी रचनाओं को अपनी रचना बतला कर, मजे के दिन गुजार रहे हैं, जनता की प्रशंसा लूट रहे हैं—सभ्य समाज से सम्मान के अधिकारी हो रहे हैं। वैसे आज भी कई टुटपुंजिए आलोचक होमर की महान रचना को रामायण का भावानुवाद बतलाते हैं। किंतु, विद्वानों का लक्षण यह नहीं है कि वास्तविकता की परख किये बिना, किसी महान प्रतिभा की खिल्ली भी उड़ाये। विद्वत्ता विनम्रता सिखलाती है। वह विनम्रता का वरदान देती है। मगर, होता है इसके विपरीत। आज का विद्वान उद्दंड होता है। यह दूसरी बात है कि होमर के काव्यों और भारतीय रामायण में अद्‌भुत साम्य है। 'इलियड' की कथावस्तु का केंद्र उस युग की सर्वांग सुंदरी हेलेन है, तो 'ओडेसी' में पेनिलोपो मुख्य कथा की केंद्रविंदु है। इन दोनों ऐतिहासिक प्रेम-आख्यानों के महाकाव्यों में यद्यपि शौर्य-वीर्य का वर्णन ही मुख्य है, तथापि इनकी मुख्य प्रेरणाएँ हेलेन और पेनिलोपो ही हैं। यूनान की इन असाधारण सौंदर्य की प्रतिमाओं के लिए

होनेवाला राष्ट्रव्यापी संघर्ष यद्यपि प्रतीकात्मक है, किंतु प्रेम-तत्त्व की अखंड धारा उनमें आदि से अंत तक विद्यमान है। ट्राय का राजकुमार पेरिस, स्पार्टा की राजकुमारी हेलेन का हरण कर ले जाता है। इस पर यूनान के सभी राजकुमार राष्ट्रीय अपमान की भावना से प्रेरित हो, प्रतिशोध के निमित्त संगठित होते हैं। एकिलीज यूनानी पक्ष का सबसे बड़ा वीर था। ट्राय-पक्ष का प्रख्यात वीर था—हेक्टर! ट्राय दस वर्षों तक सैनिक घेरेबंदी में रहा। यही है संक्षेप में 'इलियड' महाकाव्य की कहानी। होमर के दूसरे महाकाव्य 'ओडेसी' में यूलिसीज के दस वर्षों के देश-देशांतर भ्रमण एवं पर्यटन की कहानी है। इसी बीच उसकी सौंदर्यमयी प्रियतमा पेनिलोपी से विवाह करने के लिए संघर्ष चलता है। जब यूलिसीज लौटता है, तब वह इन विवाहेच्छुओं को यथोचित पाठ पढ़ाता है। यूनान के ये महाकाव्य इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि इनकी गणना राष्ट्रीय महाकाव्यों में होने लगी।

और आपने देखा, यूनान ने महाकवि होमर के लिए क्या किया? उसे सड़कों पर भिखमंगों की तरह गा-गा कर पेट पालने के लिए छोड़ दिया। हाँ, तो कवि को पता चला, कोई सज्जन उसके गीत गा-गा कर सम्मानित हो रहे हैं। भूख से उसकी अंतड़ियाँ ऐंठ रही थीं। पैर लड़खड़ा रहे थे। मगर, न जाने उसे कहाँ से शक्ति आ गई। विश्वासघात का वाण वह सह न सका। अगर वह जानता कि लोग ऐसे भी किसी की महानता स्वयं पर ओढ़ना चाहते हैं, तो वह अपने गीत खुले-आम गाता भी नहीं। मगर, क्षुधा-तृप्ति का मार्ग कहाँ था? जबतक वह लोगों का मनोरंजन नहीं करता, उसे दो रोटियाँ कैसे मिलतीं?

जर्जर कवि उस नगर की ओर चला, जिस नगर में वह प्रतिभा का चोर रहता था। मार्ग में कवि को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा।

मार्ग में रोड़ों की चोट से पैर से रक्त बहने लगा। मारे भूख के सिर में चक्कर आने लगा। मगर, होमर मानने वाला नहीं है। वह तो चला जा रहा है। रोड़े, पत्थर और बालू पर अपनी सचाई के अनेक पद-चिह्न छोड़ता हुआ महाप्राण बढ़ा जा रहा है। चाहे उस नगर में पहुँच कर मर क्यों न जाय, मगर जायगा अवश्य। वह उस प्रतिभा के चोर से कहना चाहता है, "परिश्रम से प्रतिभा नहीं मिलती प्यारे! यह तो ईश्वरप्रदत्त होती है। सारा ऐश्वर्य गँवा कर भी प्रतिभा का वरदान नहीं पाया जा सकता। तुम ग़लती कर रहे हो। सचाई प्रकट कर दो।"

आँधी, तूफान, भूख और सर्दी का सामना करते हुए कवि पहुँच गया। नगर में प्रवेश करते ही उसकी भेंट एक गड़ेरिये से हो गई। कवि ने उसे अपने कुछ गीत सुनाये। गड़ेरिया सुन कर मस्त हो गया। इसका कारण था। कवि यूनान की जनता की भाषा में, यूनान के वीरों की कहानी, छंदों में बाँध कर सुनाता था। ऐसा कहा जाता है कि 'इलियड' वाली कथा होमर से पुरानी है। मगर, उस पुरानी कथा को होमर की अमर वाणी का प्रसाद कहाँ मिला था? विश्व में पत्थर तो आदिकाल से पाया जाता है, मगर अजंता और एलोरा की गुफाओं में भारतीय सभ्यता की कहानी पत्थरों पर कैसे अंकित हो गई? छेनी-हथौड़ी की चोट पर, कलाकार की उँगलियों की थरथराहट का ही तो कमाल है यह! वैसे तो मनुष्य का यह स्वभाव रहा कि वह आदिकाल से कहानी कहता और सुनता आ रहा है। अस्तु!

गड़ेरिये ने होमर को अपने मालिक के यहाँ रखा। उसे आश्रय दिलवाया। मगर, प्रतिभा के चोर को जब पता चला कि गीतों का सच्चा स्रष्टा यहाँ तक आ पहुँचा है, तब वह उस नगर को छोड़ कर भाग गया।

भला, उसमें इतना आत्मबल कहाँ था कि होमर की आवाज सह पाता, होमर से बातें कर पाता ? होमर गड़ेरिये के मालिक को गीत सुनाता रहा। गड़ेरिये के मालिक की राय से ही होमर ने एक पाठशाला कायम की, वह वहाँ नवसिखुए कवियों को काव्य-रचना की शिक्षा देने लगा। शिक्षक का संस्कार तो उसमें था ही। काव्य-रचना के संबंध में उसके विचार अकाट्य होते थे। अब उसे सम्मान मिलने लगा।

इन्हीं दिनों एक सुंदर महिला से कवि का विवाह हो गया। अंधे पति को पाकर वह उदास न थी। वह समझती, होमर के रूप में उसे अशेष संपत्ति मिली है। क्या होमर-जैसे कलाकार की जीवन-संगिनी बनने का सौभाग्य सभी नारियों को प्राप्त हो सकता है ?

कुछ रोज बाद कवि दो संतानों का पिता भी हुआ। अब उसके यहाँ साहित्यकार जुटने लगे। विचार-विमर्श होते। कवि अपने विचार प्रकट करता।

इन्हीं दिनों कवि की इच्छा हुई कि वह पुनः पर्यटन करे। वह निकल पड़ा पर्यटन करने और पहुँच गया—एथेंस। एक द्वीप के किनारे वह बीमार पड़ गया। यह बीमारी कवि की अंतिम बीमारी साबित हुई। अब वह महा-महाप्राण महाप्रस्थान करने वाला था। विद्वानों की आँखें उस पर जा लगीं। लोग उससे मिलने के लिए आने लगे।

इस प्रकार का परंपरा-क्रम टूटना चाहिए।

आप पूछेंगे, "कैसी परंपरा, कैसी परंपरा का क्रम टूटना चाहिए ?"

निवेदन है परंपरा के उस क्रम को तोड़न का, जिसकी रूढ़ि की रक्षा के निमित्त हम असाधारण व्यक्तित्वों को, उनके जीवन-काल में उचित

सम्मान नहीं देते। वह उचित सम्मान, जो उनका हमारे यहाँ बाकी रहता है, महान देन के रूप में उनसे पाया गया ऋण !

अक्सर हमलोग राजनीतिज्ञों का सम्मान उनके जीवन-काल में ही करने लगते हैं। इतना सम्मान, जितना पाने के वे अधिकारी नहीं होते। लेकिन, क्या यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसा सम्मान या तो उनकी व्यक्ति-पूजा होती है या यह सब कुछ उनके राजनीतिक एजेंटों द्वारा होता है ? किसी को नौकरी पाने की लालच, किसी को पदोन्नति का व्यामोह, किसी को कन्ट्रैक्ट मिलने का लोभ, तो किसी को एम० पी० से मंत्रिमंडल में आ जाने की ख्वाहिश !

लेकिन, साहित्यकार-कलाकार का सम्मान करने में हम घोर कृपणता का परिचय देते हैं। निवेदन है कि हम इस परंपरा को तोड़ें कि मृत्यु के बाद ही हम ऐसे लोगों का सम्मान करें, उनके स्मारक-भवन के लिए चंदा बटोरना शुरू करें।

होमर के पास भी सभ्य समाज तभी जाने लगा, जब वह मृत्यु-पथ का यात्री बन चुका था। जब उसकी आत्मा महा अनंत की ओर अपने पंख को मोड़ रही थी। लगता था, जैसे समाज के स्वार्थपूर्ण शोरगुल सुन-सुन कर, उसका मन पागल हुआ जा रहा है। और, वह तो दुनियादार नहीं था, दुनियादारी उसकी रोशनी नहीं थी।

और, एक रोज ! कवि इस नश्वर शरीर को छोड़ कर चल बसा। उसके इस गौरव को प्राप्त करने के लिए बहुत लोगों ने कहा, "होमर तो हमारे यहाँ का रहनेवाला था।" मगर, होमर किसी एक के घर, गाँव, कस्बे या शहर का निवासी नहीं था। वह तो जन-जन के हृदय में बस गया था।

जब तक वह जीवित रहा, समाज उसे ठुकराता रहा। जब वह मर गया, तब उसे लोग अपनाने लगे। काश, वहाँ की जनता उसके साधना के दिनों में ही उसे अपना ली होती!

लेकिन, आज के भौतिकवादी युग में भला इस कलंक को कौन स्वीकार करेगा? आज तो हर इंसान सच्चाई से मुँह छिपा कर चलने के लिए अभ्यस्त हो गया है।

हमारे कानों में तो अब यही आवाज सुनायी पड़ती है :—

Seven rival towns Contend for Homer dead;
Through which the living Homer begged his bread.

परंतु, क्या वास्तव में होमर मर गया है? नहीं तो!

वह तो अपने महाकाव्यों में प्रत्येक छंद के साथ बोल रहा है, उसकी प्रतिभा की मीठी धूप में साहित्य-रसिक अपनी आत्मा सेंक रहे हैं।

मानवता का मसीहा

"जब लड़कपन में उनके चमत्कारों को देख कर लोग यह जान चुके थे कि ईसा ईश्वर के पुत्र हैं, तब फिर भला लोगों ने उनके साथ दुर्व्यवहार क्यों किये ?"

यह शंका उस अष्टवर्षीय बालक की थी, जो गुन्सबैच (अलास्का) के एक साधारण पादरी का पुत्र था और आज जो 'बीसवीं शताब्दी का महामानव' कहा जा रहा है। इस्टर की छुट्टी हुई, तो माता ने पुत्र के लिए नया जूता खरीद दिया। लेकिन माता ने देखा, पुत्र नए जूते को घृणा की दृष्टि से देख रहा है। कुछ नहीं समझ सकने के कारण पूछा "बेटे, नया जूता क्यों नहीं पहनते ?"

"नहीं पहनूँगा।" बेटे ने इन्कार किया।

"आखिर क्यों, यह तुम्हें पसंद नहीं है ?"

"पसंद क्यों नहीं, लेकिन......।"

"लेकिन ?"

"पड़ोस के और बच्चों को नए जूते कहाँ हैं ?"

"तू पड़ोस के बच्चों की क्यों चिंता करता है ?"

"तो क्या सिर्फ अपनी ही चिंता करूँ ? तुम क्या सोचती हो, मनुष्य को केवल अपने ही लिए जीना चाहिए ?"

अबोध शिशु के मुख से ऐसी बातें सुन कर माँ चुप रह गई। वहाँ के बच्चों के मनोरंजन का एक मात्र साधन था—बंसी से मछली मारना। माँ ने अपने बच्चे के लिए भी एक अच्छी-सी बंसी खरीद दी। किंतु, महगे छीप और मजबूत बँधे हुए धागे की वह बेशकीमती बंसी बच्चे का मनोरंजन न कर सकी। वह दो-एक बार बंसी लेकर नदी-किनारे गया और फिर जो उसने बंसी रख दी, तो पुनः उसकी ओर देखा तक नहीं। उसी बाल्यावस्था में उसने कहा था—"इस निष्ठुर मनोरंजन से निर्दोष प्राणियों को मर्माहत पीड़ा होती है।"

नौ वर्ष का बच्चा हर रोज, रात को, सोते वक्त, ईसा के नाम प्रार्थना करता और कहता—"प्रभु येसु, तुम संसार के प्रत्येक प्राणी को आशीर्वाद दो कि वह सुखपूर्वक जीवित रह सके।"

यही महान सेवा-धर्मी बालक जब इकतालीस वर्ष का हुआ, तब नोबेल-पुरस्कार के निर्णायकों ने १९५२ ई० में उसे शांति-पुरस्कार का विजेता घोषित किया। मानवता के इस कट्टर समर्थक का नाम है—अल्बर्ट स्विट्ज़र। आपके पिता स्थानीय चर्च में धर्मोपदेशक थे। पिता के संपर्क के कारण बालक स्विट्ज़र को ईसाई धर्म में अभिरुचि होना स्वाभाविक था। आठ ही वर्ष की अवस्था में आपने बाइबिल का इतना गहन अध्ययन कर लिया था कि आपकी बुद्धि से समीक्षा के बीज अंकुरित होने लगे थे। धर्म के संबंध में

स्विट्ज़र की शंकाएँ बहुत कठिन होती थीं। वे अपनी शंकाएँ, अपने पिता और अन्य पादरियों के सामने प्रकट करते और उनका उचित समाधान नहीं पा सकने के कारण, आप-ही-आप झुँझला पड़ते थे।

धर्म और दर्शन के अनुशीलन की जो प्रतिभा चेतना में अस्फुट पड़ी थी, बड़े होकर उन्होंने उसे प्रस्फुटित करने की चेष्टा की। आप जब विश्व-विद्यालय में पढ़ने आए, तब आपने अपना पाठ्य-विषय चुना—धर्म-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र। इन विषयों में उनकी इतनी अभिरुचि थी कि विश्वविद्यालय में अपने दुरुह विषयों का अध्ययन करते समय भी, थोड़ा समय निकाल कर, वहीं एक चर्च में धर्मोपदेश भी किया करते थे। स्वाध्यायी होने के कारण विश्वविद्यालय की पढ़ाई में खर्च होनेवाला समय उन्हें और आगे बढ़ा रहा था। वे अपने बचे-खुचे समय को स्थानीय दर्शनशास्त्रियों और धर्मोपदेशकों के बीच बिताते। धार्मिक तत्त्वों का ऐतिहासिक अनुसंधान करने की जैसे एक 'हॉबी' हो गई थी। प्रतिभा तो चमत्कार दिखलाने का मार्ग खोज ही लेती है। सन् १९०६ ई० में अपने अनुसंधानों के परिणाम स्वरूप आपका एक प्रसिद्ध प्रामाणिक धर्म-ग्रंथ प्रकाशित हुआ—'डिसकवरी ऑफ हीसटोरिकल ईसा'। इस महान ग्रंथ के प्रकाशन ने स्विट्ज़र को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दिलवाई। आपने इस पुस्तक में ईसाइयों के अंध-श्रद्धा-जन्य विश्वासों का निराकरण तो किया ही था, साथ ही ईश्वर के पुत्र ईसा मसीह का नए ढंग से समुचित मूल्यांकन भी किया था। आपने उक्त पुस्तक में ईसा के अमर संदेश का मनोविश्लेषण करते हुए लिखा है—"प्रभु येसु को सच्चे अर्थ में समझने का अर्थ यह है कि मानव की उस प्रबल इच्छा-शक्ति को समझने का प्रयत्न, जो एक दूसरे की भलाई की भावना में समावेष्ठित है!"

हजारों कोस से एक अंग्रेज पत्रकार आपसे मिलने गया। उसने आपसे आपकी भावी इच्छा जानने की चेष्टा की। आपने सहज स्वर में कहा, "न तो मैं प्रशंसा चाहता हूँ और न प्रसिद्धि। प्राणियों की सेवा करना अपना धर्म समझता हूँ। प्रभु येसु से यही प्रार्थना है कि मैं सच्चे हृदय से अपनी भावनाओं को इस सेवा-कार्य में नियोजित कर सकूँ।"

अंग्रेज पत्रकार का हृदय श्रद्धा से आह्लादित हो उठा। यह साधारण-सा वयोवृद्ध व्यक्ति अपने प्रति इतना उदासीन, किंतु जीवन-निष्ठा के प्रति कितना सजग है! यही तो महामानवों की विशेषता होती है, विशिष्ट बिंदु होता है, जो उसे 'महामानव' की संज्ञा से मर्यादित और विभूषित करता है। अंग्रेज पत्रकार अपने बेशकीमती कपड़ों को देख-देख कर, मन-ही-मन झुँझलाने लगा। यह सब क्या है, कुछ नहीं है। यह सारा वस्त्र तो केवल-शरीर की शोभा है, इन वस्त्रों में पैसे की चमक है—आत्मा का चमत्कार कहाँ, हृदय की विशालता कहाँ, ऊँचे विचारों का परिष्कार कहाँ? पत्रकार ने स्विट्ज़र की आँखों में देखा। क्षमाशीलता, स्नेहशीलता और भाव-प्रवणता—ये तीनों रंग उन आँखों में भरे थे। मस्तक पर दार्शनिक-तत्त्व-चिंतनाओं की सीमातीत रेखाएँ!

पत्रकार अभी इस महामानव की महानता में खोया ही था कि एकाएक स्विटजर ने कहा, "देखिए, चींटियों की विशाल सेना चली जा रही है। कृपया, अपने पैर हटा लीजिए, वरना इन्हें पीड़ा पहुँचेगी।"

"जी।" पत्रकार ने कहा और वह चींटियों के रास्ते से अलग जा खड़ा हुआ। महामानव अल्बर्ट स्विटज़र ने बतलाया कि यहाँ प्रत्येक प्राणी की रक्षा का समुचित ध्यान रखा जाता है। लेकिन, फिर भी, मनुष्य भूलों का पुतला है। हमारी वजह से किसी-किसी प्राणी को असुविधा हो ही जाती है।

इसी वक्त की घटना है। झाड़ी में काली बत्तखें चर रही थीं। तभी अल्बर्ट स्विट्ज़र का झबरा कुत्ता कहीं से दौड़ता हुआ आया और झाड़ी की ओर हिंसक प्रवृति से दौड़ा। पत्रकार का ध्यान तो उस ओर नहीं गया, लेकिन अल्बर्ट स्विट्ज़र ने कुत्ते को डाँट कर पुकारा, "कम ऑन बुलडॉग ! यू वील बी पनिश्ड !" (झबरे, तू चला आ। तू दंडित किया जायगा !)। स्वामी की पुकार पर कुत्ता शायद शर्मिंदा हो गया और वह अल्बर्ट के पास आ कर बड़े प्यार से दुम हिलाने लगा। अल्बर्ट का स्वर अब मीठा हो गया। उन्होंने परिहास के स्वर में कुत्ते की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "अरे, क्या तू नहीं जानता कि विश्व-शांति के लिए नोबुल पुरस्कार पाने वाले के घर में तुम रहते हो ? पागल, तुम्हें तो यहाँ शांतिवादी बनना चाहिए, भलेमानुस की तरह रहो··· ।"

पत्रकार के आश्चर्य की सीमा न रही। ओह, तो क्या इस समानधर्मी आदर्श-जीवी महामानव के हृदय में हास-परिहास की भी इतनी जीवंत भावनाएँ भरी हैं ?

अल्बर्ट स्विट्ज़र में प्रतिभाएँ उसी प्रकार बसती हैं, जिस प्रकार फूलों में सुगंध। अल्बर्ट एकमुखी प्रतिभा के धनी नहीं, बहुमुखी प्रतिभा के जादूगर हैं। यह ठीक है कि एक ही व्यक्ति एक साथ कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ हो सकता है। यह अधिक दुष्कर कार्य नहीं है। ऐसे व्यक्ति संसार में होते रहे हैं। लेकिन, इसमें अधिक आश्चर्य की गुंजाइश नहीं; क्योंकि इन तीनों का विकास-क्षेत्र प्राय: एक ही है—तीव्र सौंदर्य-बोध अथवा रस-सृष्टि की उच्चतम भावना। लेकिन, क्या आप विश्वास करेंगे कि अल्बर्ट एक ही साथ चित्रकार, कवि, संगीतज्ञ, दार्शनिक, वैज्ञानिक, बाइबिल के सिद्धहस्त ज्ञाता

और डाक्टर भी हैं ? करना ही होगा; क्योंकि इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपनी प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। आपने एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी है 'बाच का जीवन-चरित'। बाच-संगीत यूरोप की उच्चतम शास्त्रीय संगीत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ऐसे अनुसंधानपूर्ण विषय पर एक महान ग्रंथ का प्रणयन करना साधारण प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का काम नहीं है। इस काम को करने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि तत्कालीन बाच-संगीत का शोधपूर्ण ऐतिहासिक अध्ययन और अनुसंधान किया जाय। और, अल्बर्ट स्विट्ज़र ने यह सारा काम विद्वतापूर्ण ढंग से किया था। आपकी अवस्था जब तीस वर्ष की थी, तभी आप सारे यूरोप में पियानो-वादन के लिए आशातीत ख्याति पा चुके थे। इस कला-साधना के कारण, आपको हजारों पौंड की वार्षिक आय भी हो जाती थी।

धर्म-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र और संगीत-शास्त्र में आचार्यत्व प्राप्त करने के बाद अल्बर्ट स्विटजर बैठे न रहे। वे संसार में अपनी विद्वत्ता मात्र की धाक नहीं जमाना चाहते थे, वे तो प्राणिमात्र के सच्चे सेवक थे। आप प्रत्यक्ष रूप से मानव की सेवा करना चाहते थे। आप में डाक्टरी पढ़ने की इच्छा तीव्र हुई। रास्ते में अनेक बाधाएँ थीं, लेकिन पुरुषार्थ के मार्ग में बाधाएँ शक्तिहीन हो जाती हैं। नदी की तेज धारा के सामने छोटे-छोटे ढेले कुछ कर नहीं पाते, बल्कि धारा के वेग में वे स्वयं गल जाते हैं और उनके अस्तित्व का कहीं पता भी नहीं लगता। आपने जीवन के अगले सात वर्ष स्ट्रेस्बर्ग विश्वविद्यालय में बिताये और सन् १९१३ ई० में ससम्मान एम० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपने वहीं अस्पताल में काम करनेवाली एक नर्स से शादी कर ली। उसका नाम था—हेलेने ब्रेसलो।

हेलेने ब्रेसलो ने सच्चे हृदय से अल्बर्ट को, अपने प्यारे पति को, प्यार किया। उसने किसी भी अर्थ में स्वार्थवश इतने बड़े विद्वान से शादी नहीं की थी; क्योंकि तब वहाँ अक्सर ऐसा होता था कि परिचारिकाएँ किसी अच्छे डाक्टर अथवा अच्छे घराने के मेडिकल-छात्र पर अपने रूप और यौवन के डोरे डाल कर, उनसे व्याह कर लेती थीं और, इन सारे उपक्रमों के लिए परिचारिकाओं का एक ही उद्देश्य होता था—अपने भावी जीवन को मर्यादा और सुखपूर्वक बिताना। हेलेने ब्रेसलो सच्चे अर्थ में परिचारिका थी। उसका चरित्र अत्यंत ही पवित्र था। रोगियों की सेवा करने में वह अपने-आपको भूल जाती थी। उसका प्रेम-भरा आचरण मृतप्राय मरीज के हृदय में जीवन और आशा का दीप जला देता था। वह श्रेष्ठ मानवता से आपूरित जीवन व्यतीत करना चाहती थी। अल्बर्ट स्विट्जर में उसने अपने-आपको देखा और विवाह के पश्चात्, बिना 'हनीमून' मनाये ही, वह अपने पति के साथ लैंबरीम (अफ्रीका) जाने की तैयारी में लग गई। अपनी अफ्रीका-यात्रा और वहाँ जाकर डाक्टरी करने के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए स्विट्जर ने कहा, "जहाँ पर सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ तो सभी लोग चले जायँगे या चले जाते हैं। मगर, मैंने समझा कि उस जंगली प्रदेश में, जहाँ सभ्यता का नामोनिशान नहीं है—हमारी आवश्यकता है। वहाँ हमारी जरूरत है; क्योंकि वहाँ के लोग निस्सहाय और निर्धन हैं। पेशेवर डाक्टर भला उनके लिए क्या करते ?"

लेकिन आप क्या समझते हैं, लैंबरीम में आकर अल्बर्ट-दंपति को किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई? सचाई तो यह है कि इनकी असुविधाओं का अंत नहीं था। यहाँ तक कि जब ये लोग वहाँ पहुँचे, तब इनके ठहरने के

लिए इन्हें साधारण-सा निवास-स्थान तक न मिला। यहाँ के लोग रोगी, असभ्य और अनपढ़ थे। परंतु, जो सेवा करने के लिए यहाँ आया था, वह तो सेवा से मुख नहीं मोड़ता। मलेरिया, उपदंश और कोढ़-जैसे रोगों का यहाँ भयानक साम्राज्य था। जरूरत इस बात की थी कि इस प्रकार के रोगों के चंगुल में फँसे लोगों को निःशुल्क डाक्टर और दवाएँ मिलें। फिर ऐसे रोगों को दूर करने के लिए कीमती दवाओं की भी आवश्यकता थी।

अल्बर्ट स्विट्जर ने अपनी पत्नी की सहायता से, रहने के लिए स्वयं एक छोटी-सी झोंपड़ी बनायी। पास ही एक छोटा-सा अस्पताल भी खोल दिया। नश्तर लगाने के लिए सभी अपेक्षित सामानों की आवश्यकता आ पड़ी। धीरे-धीरे दोनों ने हिम्मत की और एक छोटा-सा ऑपरेशन-थियेटर भी बनाया। लेकिन, यहाँ के आदिवासी भी पुरानी दवाओं पर विश्वास करने वाले थे। वे जड़ी-बूटी को ही सच्ची दवा मानते थे। उनके विश्वास के लिए स्विट्जर को जड़ी-बूटी का भी प्रयोग करना पड़ा।

मानवता का यह मसीहा आज भी उस अस्पताल के द्वारा मानव की निस्वार्थ सेवा करता है।

सबसे बड़ा कथाकार

जवानी में ही उसे खाँसी के भयानक रोग से दोस्ती हो गई और कफ के साथ कभी-कभी खून भी गिरने लगा। यद्यपि यह कठोर सत्य है कि सारा

लक्षण यक्ष्मा का पूर्व-रूप था, लेकिन उसने इस रोग की तनिक भी परवा न की और अपने से मिलने-जुलने वालों को स्वयं ही यह विश्वास दिलाता रहा कि लोगों को इस बात का निराधार भ्रम हो गया है मुझे यक्ष्मा ने अपने पंजे में कर लिया है। और, जब तक उससे पार लगा वह लोगों से अपने इस भयानक रोग को छिपाता रहा। जीवन के स्वर्ण-झूले पर मृत्यु को दुलारने का काम कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। मौत के कानून में जिंदगी के लिए ज़मानत नहीं होती। मृत्यु की काली, भयावनी और दिल को दहला देने वाली आँखों में, महान और हैवान की पहचान नहीं होती। विश्व-विश्रुत कथा-शिल्पी ने कभी नहीं चाहा कि उसकी पीड़ाओं से उसके दोस्तों, परिचितों और संबंधियों की परेशानी बढ़े। लेकिन, उसका भयानक रोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया। कलाकार का भौतिक शरीर गिरने लगा।

सन् १८९७ ई० के बाद उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया, बीमारी ने अपना पूरा जोर दिखलाया। और, तब से उसके सात साल केवल एलाज कराने में गुजर गए। लेकिन, इस हालत में भी उसने साहित्य-सृजन की कठिन तपस्या में किसी प्रकार की आँच न आने दी। कफ और खून से कमरे का उगालदान लबालब और इधर नाटक के दृश्य-के-दृश्य लिखे जा रहे हैं। रोग का धक्का फेफड़े पर, और प्रतिभा का चमत्कार कागज पर, अपने गुबार निकाल रहा था। यक्ष्मा की भयानक तपिश में कलाकार जल रहा था और उसकी कला की लोकप्रियता संसार के कोने-कोने में फैल रही थी। कला पायी जा रही थी, कलाकार खोया जा रहा था।

और आइए, अब मैं आपको इस कलाकार का परिचय दूँ। यह कलाकार है—विश्व-कथा-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कथाकार। आप पूछेंगे—नाम ?

एंटन चेखॉफ !

कौन जानता था कि स्टेथस्कोपधारी एक रोज संसार का सर्वश्रेष्ठ लेखनीधारी हो जाएगा ? जब वह स्कूल में पढ़ता था, तभी उसके बाप को व्यापार में गहरा घाटा लगा और उसका सारा परिवार ही मास्को चला आया। आर्थिक संकट पीछे पड़ा था। वहाँ आकर उसने डाक्टरी पढ़ना शुरू किया। जी में आया, कुछ लिखना चाहिए। पत्रों में यदि कोई रचना स्वीकृत हो गई, तो कुछ रूबल भी हाथ लग जायँगे और इस प्रकार चेखॉफ ने हँसी-मजाक की कहानियों से अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। प्रतिभा को छिपाया न जा सका और डाक्टरी पास करते-करते चेखॉफ रूस के गण्यमान कथाकारों की श्रेणी में आ गया। और, अब इस साहित्यिक धंधे से पैसे भी

मिलने लगे। अर्थ-विपन्न कलाकार ने इस कार्य को अपना व्यवसाय स्वीकार कर लिया।

सत्य के माध्यम से पैदा हुई अनुभूति कल्पना की अपेक्षा अधिक व्यापक और मार्मिक होती है। और, उसी अनुभूति को जब कोई कलाकार अपने शब्दों में अभिव्यक्ति देता है, तब उसका महत्त्व तो बढ़ता ही है, जन-समाज पर उसका असाधारण प्रभाव भी पड़ता है।

सन् १८९० ई० की घटना है। कैदियों की स्थिति की जाँच करने के उद्देश्य से चेखॉफ साइबेरिया और स्खालिन गया। वहाँ के कैदियों की हालत अत्यंत शोचनीय थी। बेचारे पशुवत् जीवन बिता रहे थे। लेकिन, उनकी दुःस्थिति का प्रभाव चेखॉफ के मस्तिष्क पर पड़ा। वहाँ से आकर उसने 'स्खालिन' नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें कैदियों की दुःस्थिति का नग्न चित्रण था। कैदियों की आत्मा की ओर से, उक्त रिपोर्ट में, मानवता के नाम मर्मवेधिनी अपील थी। मनुष्य के बनाये हुए कड़े कानून ने इन कैदियों को मानव-सुलभ-सुविधा से लाखों कोस दूर कर दिया था। चेखॉफ की इस रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद, सरकार के प्रति, जन-समाज में असंतोष और घृणा की भावना फैलने लगी। अंत में ऐसी स्थिति आयी कि विवश होकर सरकार को कैदियों की स्थिति में आवश्यक सुधार करना पड़ा।

सन् १८९२ ई० में मास्को के आस-पास भयानक अकाल पड़ा। अकाल के फलस्वरूप जनता घटिया किस्म के भोजन करने लगी और जोरों का हैजा फैला। इतने जोरों का हैजा फैला कि लाश ढोनेवालों की कमी दिखलायी पड़ने लगी। लेकिन, मानवता का समर्थक और रक्षक, इस साहित्यकार ने, पीड़ित जनता की सहायता में जो-तोड़ परिश्रम किया। इतना ही नहीं, जब तक उसकी

स्थिति ऐसी रही कि वह लोगों को मुफ्त दवा दे सके, देता रहा। १८६८ ई० के बाद तो चेखॉफ ने अनेकों बार यूरोप की यात्रा की। मध्य-वर्ग के लोगों में उसका मन बहुत लगता था। अक्सर ऐसे ही लोगों के साथ वह अपने फ़ुर्सत के समय को गुजारना पसंद करता। आप उसकी कहानियाँ पढ़ें और तब देखें कि उसने अपनी कहानियों में मध्य-परिवार का कितना सजीव वर्णन किया है। वह जीवन भर मानव-प्रेम का कट्टर समर्थक और रक्षक रहा। दूसरों का दुःख देख कर, सहज ही उसका हृदय करुणा से भर उठता था। जन-जन के हृदय में मानवता का संदेश भरने की उसमें उत्कट अभिलाषा थी। वह प्रेम और क्षमा का जीता-जागता मानव-रूप था। अपने संपर्क में आनेवाले प्रायः सभी अभावग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करने में उसकी जिंदगी समाप्त हो गई। जब तक वह जीवित रहा, एक लंबे परिवार का भार उसके कंधों पर रहा। मगर, उसने परिवार के लोगों की कभी अवहेलना नहीं की और उस भार को अपना महान कर्त्तव्य समझ कर जीवन-पर्यन्त ढोता रहा।

चेखॉफ के निकट संपर्क में रहनेवाले साहित्य-मनीषियों ने लिखा है कि स्वयं चेखॉफ का व्यक्तित्व ऐसा नहीं था कि वह दूसरों को प्रभावित कर ले; किंतु उसके हृदय में मानवता के प्रति जो महान आस्था थी, उससे प्रभावित हुए बिना कोई नहीं रहता था। विश्व-उपन्यास-साहित्य में महान यश के भागी, महात्मा टाल्स्टाय से चेखॉफ का बड़ा प्रेम था। यह ठीक है कि कई लोगों ने टाल्स्टाय के स्वभाव की भी बड़ी कड़ी टीका-टिप्पणी की है। टाल्स्टाय के स्वभाव के विषय में तो एक जगह यहाँ तक कहा गया है—"वह बड़ा ही घमंडी था। किसी के नमस्कार का शीघ्र उत्तर नहीं देता था; साथ

ही अपनी रचनाओं की खरी-खोटी आलोचना को वह बर्दाश्त नहीं कर पाता था। बड़ा ही चिड़चिड़ा; बात-बात पर झगड़ा करने को तैयार !"

परंतु, कलाकार को देखने के लिए शायद भौतिक आँखें नहीं चाहिए। यह वही टाल्स्टाय है, जिसके 'वार एंड पीस' नामक उपन्यास में पाँच सौ से अधिक पात्र हैं, और जिनके चरित्र का चित्रण करने में टाल्स्टाय को महान सफलता मिली। एक तो इतना बड़ा उपन्यास लिखना, उस पर पाँच सौ पात्र ! क्या यह साधारण मस्तिष्क वाले साहित्यकार का काम है ? चेखॉफ ने टाल्स्टाय की बारीकी पहचानी और टाल्स्टाय ने चेखॉफ की। दोनों का मैत्री-संबंध निभता रहा। दोनों ने एक दूसरे को अति निकट से देखा और पहचाना, पहचाना और देखा। तभी तो टाल्स्टाय ने चेखॉफ के बारे में लिखा है—"चेखॉफ उनलोगों में से था, जो हर अपराध को क्षमा कर देते हैं, प्रत्येक दोष को अनदेखा कर देते हैं। इसलिए कि चेखॉफ मानव-स्वभाव को खूब समझता है और इसलिए वह सबको माफ भी कर देता है।"

संसार के सम्मानित समालोचकों ने चेखॉफ को विश्व-कथा-साहित्य में एक नई कथा-शैली का प्रवर्त्तक माना है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका कहानी सुनाने का विचार बिलकुल अप्रत्यक्ष हो जाता है। अपने पात्रों के चेतना केंद्र के पीछे वह इस प्रकार छिपा बैठा होता है कि उसे देखना बड़ा कठिन हो जाता है। सृष्टि चारों ओर, स्रष्टा कहीं नहीं ! सबसे बड़ी विशेषता चेखॉफ की यह रही है कि वह अपनी कहानी के नायक अथवा नायिका के जीवन का कोई ऐसा विशेष अंश खींचता है, जिसकी प्रतिक्रिया में उनकी संपूर्ण मानसिक अथवा आध्यात्मिक परिस्थितियाँ उभर कर सामने आ जाती हैं। इतना प्रभावोत्पादक चित्रण करने के बावजूद

चेखॉफ की रचनाओं में उनकी एक और विशेषता गौण नहीं होने पाती। और उनकी वह विशेषता है—हास्य-रस। हास्य का वह रस, जो हमारे हृदय में चोट पैदा करे, और वही चोट, जो करुणा के रस से आँखों को अश्रुमय बना दे। लेकिन, चेखॉफ ने अपनी इस प्रतिभा के कारण किसी की असफलता का उपहास नहीं किया। फ्रेंच साहित्यकार वाल्तेयर के व्यंग्य-वाण अपनी निपट क्रूरता के लिए विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। लेकिन, उसने अपने साहित्यिक व्यंग्य-वाणों को केवल व्यंग्य के लिए प्रयोग किया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन व्यंग्य-वाणों के द्वारा उसने फ्रांस की जड़-सुप्त जनता को झकझोर कर जगाया और उससे फ्रांस में एक महान जन-क्रांति की अवतारणा हुई। चेखॉफ में अमर्ष, आवेश और तीव्रता की अधिकता नहीं थी। उसकी अमूल्य प्रतिभा-तुला पर कला का चरम उत्कर्ष, उसकी अनुभूति की तीव्र खोज और मानवानुभूति के सूक्ष्म तत्त्व तौले गए हैं। वह एक साधारण पात्र अथवा साधारण-सी परिस्थिति का निर्माण कर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोव्यथा को चित्रण करने में अपना सानी नहीं रखता था। उदाहरण के लिए यह आवश्यक हैं कि हम उसकी एक-दो कहानी का रसास्वादन करें।

उसकी एक कहानी है—'गिरगिट'। इसमें दिखलाया गया है कि परिस्थिति-विशेष के कारण मनुष्य किस प्रकार गिरगिट की तरह अपने रंग को अथवा अपनी भावनाओं को बदलता है। 'गिरगिट' शीर्षक कहानी में एक दारोगा अपनी नई वर्दी में लैस होकर, एक बाजार से गुजर रहा है। उसी वक्त उसे एक ओर से लोगों का शोरगुल सुनायी पड़ता है। वह दौड़ा-दौड़ा उस जगह पहुँचता है। लोगों की भीड़ के पास

पहुँच कर, वह डपट कर पूछता है, "क्या शोर मचा रखा है, आखिर माजरा क्या है ?"

तभी भीड़ के बीच से एक आदमी उसके आगे आता है और अपनी फटी हुई कमीज और कटी हुई उँगली दिखला कर कहता है, "देखिए, इस कुत्ते ने मेरी उँगली काट ली है।" उस आदमी की उँगली से रक्त निकल रहा है। उसकी बातें सुनते ही उस दारोगा को बड़ा क्रोध आता है। कुत्ता भीड़ के पास ही सहमा-सा खड़ा है। दारोगा अपने साथ के सिपाहियों को आदेश देता है कि वे कुत्ते को जान से मार डालें, कुत्ता बड़ा खतरनाक है। लेकिन, तत्क्षण भीड़ के बीच से किसी आदमी का यह स्वर सुनायी पड़ता है—"यह कुत्ता तो अमुक मेजर का है।"

मेजर का नाम सुनते ही दारोगा का क्रोध उल्टा हो जाता है। वह उसी आदमी पर गुस्सा हो जाता है, जिसे कुत्ते ने काट खाया था और वह उसे डाँटने लगता है। कहता है, "कुत्ता ऐसे नहीं काट सकता। अवश्य ही तुमने इसके साथ कोई शरारत की होगी।"

भला, एक दारोगा की क्या हिम्मत, जो एक मेजर के कुत्ते को जान से मार डालने का आदेश दे ! वह किसी निर्दोष व्यक्ति की उँगली की परवा न कर, मेजर के लिहाज और अपनी नौकरी की परवा में लग जाता है। और, इस साधारण-सी कहानी के द्वारा चेखॉफ को जो व्यंग्य करना होता है, सफलतापूर्वक करने पर, वह आप कहीं स्पष्ट नहीं होता।

एँटन चेखॉफ की एक प्रसिद्ध कहानी है—'लॉटरी का टिकट'। कहानी इस प्रकार है कि बीवी ने लॉटरी का टिकट खरीदा था। पति

अखबार में देख लेता है कि लॉटरी की रकम उसकी बीबी के नाम आयी है। उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती। लेकिन, तत्क्षण उसे इस बात को सोच कर उदासी होती है कि उसकी बीबी इतनी बड़ी खासी रकम को पाकर भी कंजूसी करेगी। अपने रुपए को तो वह इस प्रकार खर्च करेगी कि उसमें कुछ मजा न आएगा। वह अनेकों प्रकार उस रकम को खर्च करने की योजनाएँ बनाने लगता है और इसी सिलसिले में वह अपनी बीबी के प्रति, मन में हजारों शिकायतें तैयार कर लेता है। इधर बीबी को भी मालूम हो जाता है कि लॉटरी के चलते उसका ही भाग्योदय हुआ है। किंतु उसके मन में यह आशंका उठने लगती है कि इतनी बड़ी धन-राशि को वह जिस प्रकार खर्च करना चाहेगी, उस प्रकार खर्च नहीं कर सकेगी; क्योंकि उसका पति इस कार्य में मार्ग-रोधक बन जायगा। वह अपने पति के स्वभाव से लाचार होकर, भीतर-ही-भीतर उसको बुरा-भला कहने लगती है। किंतु, अबतक गनीमत यही रही कि पति-पत्नी के बीच खुला संघर्ष नहीं हो पाया और संयोग से पतिदेव ने लॉटरी के नंबर को पुनः अच्छी तरह गौर करके देखा। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चला कि पहला नंबर गलती से पढ़ा गया था। फलस्वरूप, दोनों का दिमाग ठंढा हो जाता है। संघर्ष भीतर-ही-भीतर दब जाता है और एक के प्रति दूसरे की जो शिकायतें थीं, लॉटरी की वास्तविकता का पता चलते ही, दूर हो जाती हैं। इस कहानी से चेखॉफ ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि दोनों हो नेक थे, ईमानदार थे, सज्जन थे। वे गरीब थे, लेकिन अगर उतनी बड़ी धन-राशि मिल जाती, तो दोनों का स्वाभाविक दाम्पत्य-प्रेम जाता रहता।

हम ऊपर कह आए हैं कि चेखॉफ की कहानियों में हँसने की गुंजाइश पर्याप्त है; लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी कई कहानियाँ बहुत ही सीरियस और हृदय पर एक चिरंतन प्रभाव छोड़ने वाली हैं। हम उसकी प्रसिद्ध नायिका 'प्यारी' के चरित्र को ही सामने रखें, तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

ओलंका नाम की एक युवती, अपने प्रेममय स्वभाव के कारण सर्वत्र ही 'प्यारी' के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। उस युवती का पहला व्याह एक ऐसे व्यक्ति के साथ होता है, जो रूस की एक ख्यातिप्राप्त थिएटर-कंपनी का स्वत्वाधिकारी है। जब तक वह अपने इस पति के साथ रहती है, उसके इस व्यवसाय में हर प्रकार को सहायता करती है। कंपनी की उन्नति की बातें सोचा करती है और जिस व्यक्ति से मिलती है, उससे प्रायः थिएटर-संबंधी ही बातें करती है।

अब उसके जीवन का दूसरा पहलू प्रारंभ होता है। उसके पहले पति की मृत्यु हो जाती है और उसका दूसरा पति होता है, एक लकड़ी का व्यापारी। उसकी जीविका है—लकड़ी की खरीद, बिक्री, लकड़ी का कारो-बार। इस व्यापारी को कला से कोई शौक नहीं। नाच, तमाशा, थिएटर आदि का वह बिलकुल ही शौकीन नहीं है। परिस्थितियों के साथ-साथ नारी अपने मानसिक भावनाओं के मोड़ बदलती चलती है; क्योंकि उसे वर्तमान वातावरण के प्रभाव में ही साँस लेनी है। अब प्यारी ऐसी नीरस-सी हो गई है कि वह थिएटर कभी नहीं जाती, थिएटर की बातें भी नहीं करती और अगर कोई व्यक्ति उससे थिएटर की चर्चा करता है, तो वह अपनी अनिच्छा

और अरुचि प्रकट करती हुई कहती है—"जाने भी दो, छोड़ो। इन निरर्थक बातों के लिए न तो मेरे पास समय है और न मेरे पति के पास।"

परिस्थितियों के चक्र के साथ ही उसके जीवन के वेगवान मनोभाव किस तरह बदलते जाते हैं? मन की गति की थाह अकल्पनीय होती जाती है। अब उसके दैनिक वार्त्तालाप का विषय रह जाता है—केवल लकड़ियों के मोल-तोल, लकड़ियों की महँगाई और सस्ती। लकड़ी के व्यापार में क्या-क्या कठिनाइयाँ संभव हैं,—या हो रही हैं, वह इन्हीं विषयों पर बोलना या किसी से बातें करना पसंद करती है। उसके मनोभावों का व्यतिक्रम यहाँ तक होता है कि वह स्वप्न में भी लकड़ियों के ढेर और तख्तियों को देखती है। लकड़ी के व्यापार की ही स्वर्ण-संभावनाओं की कल्पना करती रहती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के इस अप्रत्याशित परिवर्त्तन के कारण, वह किसी प्रकार भी आत्मभ्रांति अथवा मानसिक विपर्यय का शिकार नहीं होती है। उसके जीवन में फिर एक तीसरा पुरुष आता है; क्योंकि लकड़ी के व्यापारी के साथ, छह साल रहने के बाद, वह पुनः विधवा हो जाती है। यह तीसरा पुरुष है, जो प्यारी से व्याह तो नहीं करता, लेकिन प्यारी को अपनी अशेष सहानुभूति का हकदार बनाता है। यह है एक जानवरों का डॉक्टर। प्यारी फिर अपने को परिस्थितियों में समेट लेती है। वह डॉक्टर की पत्नी और उसके दस वर्ष के बच्चे को अपने घर में रख लेती है। और, अब ऐसा लगता है कि उसके जीवन के चिर-अंधकार में फिर एक उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण हो गया। वह पिछली सारी पीड़ाओं को भूल जाती है। यह कहना मुश्किल हो जाता है कि उसके हृदय पर विगत वातावरण का प्रभाव कैसा और किस रूप में पड़ा है।

प्यारी अब दिन-रात डॉक्टर के बच्चे को खिलाने-पिलाने, दुलारने, पुचकारने और बनाने-सँवारने में लगी रहती है। परिवार के इस जीवन-प्रवाह में जैसे वह अपने को खो देती है। वह बच्चे को लेकर रोज ही स्कूल के आधे रास्ते तक, उसे छोड़ने जाती है और मार्ग में मिलनेवालों से अत्यंत भावुकतापूर्ण स्वर में कहती है, "देखो न, छोटे दरजों के पाठ्य-विषय भी कितने कठिन होते हैं ? और इन छोटे बच्चों से स्कूल में ऐसे सवाल किये जाते हैं, जिनके जवाब उन्हें कभी बतलाये नहीं गए ...।"

इस कहानी से हमने यह देख लिया कि महान चेखॉफ कितना अंतर्द्रष्टा था। अब आइए, हम यह देखें कि चेखॉफ की प्रतिभा आत्मीयता की किस गहराई तक पहुँच चुकी थी। उसने एक कहानी गाड़ीवान को लेकर लिखी है। गाड़ीवान बूढ़ा हो चला है और उसका अपना नौजवान बेटा उसके साथ विश्वासघात कर जाता है। अब उसका साथ देने वाला कोई नहीं रहा। वह भीतर-ही-भीतर महान मानसिक पीड़ा का अनुभव करता है। जब वह इस पीड़ा को बर्दाश्त नहीं कर पाता, तब अपने गाड़ी पर सवार होनेवाले यात्रियों से अपनी करुण कहानी सुना कर, अपनी पीड़ा को हल्की करना चाहता है। मगर, भला वे राह के चलते मुसाफिर उसके लिए क्या कर सकते थे ? उसे निराशा होती है। सहानुभूति के अभाव में उसका हृदय तड़पता रहता है।

दिन भर गाड़ी हाँकने के बाद थका-माँदा जब वह अपने घर लौटता है, तब गाड़ी खींचनेवाली अपनी घोड़ी को चुमकारने और प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगता है। घोड़ी को भी अपने स्वामी के प्रति अपार स्नेह है। प्यारवश, वह भी अपने स्वामी को सूँघने लगती है। मूक पशु

का वह अव्यक्त प्यार ही, उस दुखित व्यक्ति की चिर-संचित भाव-राशि को, फोड़ कर बाहर निकालने में समर्थ हो जाता है। व्यथा और सहानुभूति से उसका हृदय भर उठता है। और तब ? तब जानते हैं, वह गाड़ीवान क्या करता है ? वह उस घोड़ी के आगे चारा रख कर, उसे आत्मकहानी सुनाने लगता है। घोड़ी कुछ भी नहीं समझ कर भी, उसे सूँघती रहती है।

ओह, तो इस कहानी में चेखॉफ ने मानवता का कितना महान संदेश दिया है ! क्या उसकी यह अमर रचना इस बात का प्रमाण नहीं है कि चेखॉफ मानव जीवन को सँवारने-सुधारने वाला था ? यह तो मानव-समाज का दोष है कि वह उस दिव्यात्मा के अमर संदेश को ग्रहण न कर सका और मानव आज भी पूर्ण मानव नहीं हो पाया।

और, उधर देखिए सामने। सन् १६०४ ई०। ऑपेरा-हाउस रोशनी से जगमगा रहा है। हजारों दर्शकों से हॉल खचाखच भरा है। और, दिखलाया जा रहा है—चेखाफ लिखित एक प्रसिद्ध नाटक। दर्शक-मंडली आनंद में आत्मविस्मृत हो रही है। और, साथ ही दर्शकों ने शोर मचा कर कहा, "हम इस नाटक के लेखक के दर्शन करना चाहते हैं। उस महान चेखॉफ को स्टेज पर लाओ।"

हाँ, लोग महान चेखॉफ को देखना चाहते थे। मगर, चेखॉफ अपने व्यक्तित्व की प्रशंसा का भूखा नहीं था। वह व्यक्ति का कमाल नहीं, व्यक्ति के कार्य का कमाल देखना और दिखलाना चाहता था। उसने खबर भिजवायी, "भला, मेरे दर्शन से मेरे प्रिय प्रशंसकों को क्या मिलेगा, क्या वे मुझे क्षमा नहीं करेंगे ?"

दर्शकों से उत्तर मिला, "हमारे मन की प्यास चेखॉफ ने शांत कर दी। मगर, हमारी आँखों की प्यास तीव्र हो चली है। क्या महान चेखॉफ हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे?"

दर्शकों के आग्रह से चेखॉफ द्रवीभूत हो उठा। और, वह चला विंग से टेजर की ओर—धीरे-धीरे।

और लीजिए, देख लीजिए—एंटन चेखॉफ आपके सामने है। यक्ष्मा ने जिसका गला दबोच लिया है, क्षण-क्षण पर जो बड़ी खतरनाक खाँसी का मुकाबला कर रहा है। शरीर इतना जर्जर हो गया है, जैसे यक्ष्मा के कीड़ों ने उसका सारा रक्त दान में ले लिया है। चेखॉफ को खाँसी आई। उसने मुँह पर रूमाल रख कर खाँसने की कोशिश की, मगर बहुत छिपाने पर भी, मुँह से खून निकल ही आया। शोक के मारे दर्शक-मंडली का सर नीचा हो गया। अब वह चंद दिनों का ही मेहमान रह गया था। कला जी रही थी, कलाकार मर रहा था। दर्शकों के रूमाल आँसू से भींग गए।

चेखॉफ!

ओ महान चेखॉफ?

क्या अब तुम बचाए नहीं जा सकते? उत्तर मिला—"नहीं।" समाज के नाम कुछ संदेश? चेखॉफ की आत्मा ने उत्तर दिया, "मेरी रचनाएँ, और कुछ नहीं। मेरी कृतियों में कुछ खूबी हो, तो उन्हें अपनाओ, और क्या?"

हजारों दर्शकों के हृदयों में, आरकेस्ट्रा की तैरती हुई धुनें, जैसे एकाएक निष्प्राण हो गईं। दर्शक स्तब्ध रह गए। महान चेखॉफ को यह क्या हो

गया ? वह कौन-सी परिस्थिति थी, जो उससे, उसकी हर मिहनत के हिसाब माँग रही थी ?

कौन जानता था कि चेखॉफ को एक बड़े परिवार का खर्च चलाना पड़ता था ? लेखन की आय के सिवा उसकी और कोई आमदनी नहीं थी। वह परिवार के हर व्यक्ति के लिए, अपनी कठिन कमाई से, रोटी और मक्खन जुटा रहा था। वह परिवार के प्रत्येक सदस्य को, सर्दी से बचाने के लिए, दिन-रात खट कर, बोदका की बोतल के पैसे जुटा रहा था। भला, वह किस मुँह से कहता, "मैं तो एक ऐसे रोग का शिकार हो गया हूँ, जो मेरे प्राणों के साथ ही, मेरा साथ छोड़ेगा !" लोग कहते हैं, कलाकार परिवार की चिंता नहीं करता। मगर, चेखॉफ के बारे में आप क्या सोच सकते हैं ? वह किसे छोड़कर, कहाँ जाता ? वह तो समय और समाज के साथ समझौता कर चुका था। यह भी तो कलाकार का एक पवित्र अहं था कि वह अपने जीते-जी, अपने परिवारवालों को किसी का मुहताज होते देखना नहीं चाहता था।

अंत में वह दुर्दिन भी आया, जब जर्मनी के एक सैनिटोरियम में चेखॉफ को भर्त्ती होना पड़ा। इस बीच उसकी रचनाओं का, संसार की इक्कीस भाषाओं में अनुवाद हो चुका था। और, तब हमने एक महान साहित्यकार को उसी सैनिटोरियम में खो दिया। कहानी-कला की आकस्मिक क्षति हुई। साहित्य-सौर-मंडल का वह उज्ज्वल-प्रकाश-पिंड टूट गया। हम देखते रहे, हमारा चेखॉफ हमसे छिन गया।

●

कोडक : फोटोग्राफी का प्रतीक

सन् १८८६ ई० में उसने विज्ञापन करना प्रारंभ कर दिया था—

"आप केवल बटन दबा दीजिए, शेष सारा काम हम कर देंगे।"

और, साथ ही उस बड़े से दफ्तर में देखिए, जिसमें तेरह साल का कर्मशील बालक, एक झाड़ू देने वाले छोकड़े का काम कर रहा है। और, इसी परिस्थिति में उसका हौसला यह होता था कि वह अपनी प्राणों से प्यारी माँ से कह दे, "मम्मी, आज मेरे पास दस लाख डालर हो गए हैं।"

लेकिन, इस बालक की योग्यता और कर्मठता के आगे इतनी-सी धन राशि शायद अत्यंत ही नगण्य रकम है। आप पूछेंगे, "यह किस बे-सिर-पैरवाले व्यक्ति की कल्पना-कथा सुना रहे हो?" और मैं जवाब दूँगा, "यह उस व्यक्ति की सच्ची कहानी है कि जिसकी संपत्ति का जोखा १८६८ ई० में ६,६६,००० डालर था। वह अपनी प्रसन्नता की असीमता से तब भर उठा और उसने अपनी माँ से आकर कहा, "माँ, क्या तुम्हें मालूम है कि हमारी संपत्ति का जोखा ६,६६,००० डालर है?"

"अच्छी बात है, जॉर्ज !" माँ ने बस इतना ही कहा था। शायद माँ का आदेश था, संकेत था—जॉर्ज और अधिक कमाये।

अब जरा उस छोटी-सी लेबोरेटेरी में देखिए, आपकी कहानी का नायक किस प्रकार काँच के सूखे प्लेटों पर रोलर से मसाले लगा कर, फोटोग्राफी की आधुनिक कला को जन्म दे रहा है। यह व्यक्ति है—जॉर्ज ईस्टमैन। इसी ने 'कोडक' को जन्म दिया, जिसकी उपयोगिता आज संसार के कोने-कोने में प्रसिद्ध है। कोडक के डब्बों का पीला रंग आज सभी फोटोग्राफरों के हृदय को जीते हुए है। 'कोडक' के जन्मदाता का बाल्य-काल जिन कठिन परि-स्थितियों बीता, यह भविष्यवाणी करना मुश्किल था कि यह व्यक्ति अपनी बुद्धि के प्रयोग से, एक रोज ७७०० कर्मचारियों का भाग्य-विधाता हो जायगा और बात-की-बात में, करोड़ों डालर का चेक काटते वक्त उसे तनिक भी अभिमान न होगा। सन् १८६२ ई० में उसके पिता का देहांत हो गया। माँ और दो बहनों के साथ यह सात वर्ष का बालक संसार में बिलकुल निःसहाय हो गया। आगे दासता थी. पीछे परिवार का घना अंधकार। लेकिन, जॉर्ज ईस्टमैन की माँ ने हिम्मत की। रोचेस्टर में उसने एक छोटा-सा बोर्डिंग-हाउस खोल दिया। वह पढ़ी-लिखी और सामाजिक जीवन के दायित्वों को समझने वाली स्त्री थी। वह बोर्डिंस-हाउस में लोगों को खिलाती, झाड़ू देती और बोर्डरों के जूठे बर्त्तन साफ करने में तनिक भी संकोच नहीं करती थी। बेटे ने यह समझ लिया कि उसकी माँ इतने कष्ट इसलिए झेल रही है कि वह देखती है—उसके बच्चों का महान भविष्य स्वर्ण-संभावनाओं के लिए आगे खड़ा है। बेटे पर माता के संघर्ष की छाप पड़ी। उसने तीन डालर प्रति सप्ताह की मजदूरी कर ली। वह एक करोड़पति व्यक्ति के दफ्तर में झाड़ू

देने वाले छोकड़े का काम करने लगा। वह बड़े प्रेम से, ईमानदारी से, अपने मालिक के यहाँ झाड़ू लगाता और हर सप्ताह के अंत में तीन डालर लाकर माँ की हथेली पर रख देता। और, माँ उसका मुँह देखने लगती थी।

यह ठीक है कि आधुनिक युग में नए तरीकों से विशाल उत्पादन का सेहरा फोर्ड के सिर बँधा है; किंतु यह भी तो निर्विवाद सत्य है कि जिन दिनों फोर्ड केवल मशीन चलाना सीख रहा था, इन्हीं दिनों जॉर्ज ईस्टमैन विशाल उत्पादन करने लगा था। उन दिनों गीले प्लेट पर ही फोटो उतार लेने वाले युग का अंत हो चला था। अब सूखे प्लेट पर फोटो उतारने का युग आ रहा था। और, वैसे प्लेट को बनाने का अब तक यही तरीका था कि केटलीनुमा बर्त्तन में, मसाले को उबाल कर, काँच पर फैलाया जाय। इस क्षेत्र में ईस्टमैन ने अपने नए ईजाद के द्वारा लोगों में आश्चर्य और खुशी फैला दी। उसके आविष्कार के अनुसार, रोलर के सहारे, बड़े काँच पर मसाला लगाया जाता और फिर उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके, उसे फोटो उतारने के काम में लाया जाने लगा। आज हमलोग जो 'कोडक' का यह विकसित रूप देख रहे हैं, उसका यह प्रथम बीज था। कर्म-पुरुष जॉर्ज ईस्टमैन ने १८७९ ई० में अपनी इस खोज को पेटेंट करवाया। इसके बाद वह शीघ्र ही स्वदेश लौटा और यहाँ आकर उसने वाशिंगटन में इसे पेटेंट करवाया। फिर क्या था, सफलता आगे-आगे थी। सन् १८८० ई० में उसने न्यूयार्क के प्रमुख व्यापारियों के हाथ, कोडक का ट्रेड-मार्क लगा हुआ अपने सूखे प्लेट नियमित रूप से बेचना प्रारंभ कर दिया।

एक बार किसी ने जॉर्ज ईस्टमैन से पूछा, "आपने अपने इतने लोकप्रिय आविष्कार का नाम 'कोडक' क्यों रखा है?"

जॉर्ज ईस्टमैन ने उत्तर दिया, "देखिए, बात असल यह है कि K मेरा अत्यंय ही प्रिय शब्द है। इस शब्द को सच पूछिए, तो मैं शक्ति का परिचायक मानता हूँ। और, यही कारण है कि ट्रेड-मार्क के लिए मैंने इस शब्द को पसंद किया है। देखिए न, इसके प्रारंभ और अंत दोनों में K अक्षर लगा है।"

जिन दिनों जॉर्ज ईस्टमैन ने अपने ट्रेड-मार्क को पेटेंट करवाया, उन दिनों भी वह स्वतंत्र नहीं था, बल्कि संघर्ष ही कर रहा था। तब भी वह १४०० डालर सालाना पर, एक बैंक में साधारण नौकर था। लेकिन, ईमानदारी से नौकरी करते हुए भी, वह फुर्सत के प्रत्येक क्षण को, कोडक का समय मानता और सुबह, शाम, रात-भर अपने काम में लगा रहता। फोटो-प्लेट का उद्योग उसे इतना प्रिय हो गया था कि वह रविवार के सिवा किसी रोज सोता तक न था। उसने अपने बुद्धि के गर्भ से ऐसी जन-प्रिय वस्तु का आविष्कार किया, जिसके कारण आज करोड़ों व्यक्तियों की रोटी चल रही है और संसार के लाखों फोटो-व्यापारी आशातीत लाभ उठा रहे हैं। कल्पना कीजिए, यदि कोडक न होता, तो कोई प्रियतम अपनी प्रियतमा की तस्वीर उतार कर, रात भर छाती से कैसे चिपका पाता? यह तो कोडक की कृपा का ही प्रतिफलन है कि उसके द्वारा आज बड़े-बड़े चिकित्सक, एक्स-रे के प्लेट पर रोगियों के फेफड़े की तस्वीर लेकर इतना उचित निदान कर रहे हैं। हमें मानना पड़ेगा कि चिकित्सा-विज्ञान में भी कोडक का महत्त्वपूर्ण योग रहा है और रहेगा।

हमें देखना है कि पचास वर्ष में जॉर्ज ईस्टमैन ने क्या कर दिखलाया। हम इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि १६२६ ई० में कोडक के विशाल

उत्पादनों की बिक्री का योगफल था—नौ करोड़ डालर और आज उसके और पच्चीस वर्ष बाद कोडक के देश और विदेश का उत्पादन है—सतहत्तर करोड़ डालर और कुल लाभ उन्नीस करोड़ डालर। सन् १९५३ ई० में कोडक-कंपनी के ८५ हजार शेयर-होल्डरों को सवा तीन करोड़ डालर लाभांश बाँटा गया। संसार भर के ७४ हजार कर्मचारियों में से अकेले अमरीका के ५४ हजार कर्मचारियों को लगभग ढ़ाई करोड़ डालर वेतन मिला।

आइए, अब हम फोटोग्राफी के जन्म और विकास के संबंध में भी थोड़ी-सी चर्चा कर लें। फोटोग्राफी का जन्म सन् १८३७ ई० में हुआ। तब तस्वीरें धातु के पत्तर पर उतारी जाती थीं। इसके बाद फिर कागज पर उतारी जाने लगीं। 'निगेटिव' का आविष्कार तो पीछे हुआ, प्रारंभ में 'पॉजिटिव' पर ही तस्वीरें ली जाती थीं। सन् १८५० ई० में काँच के 'निगेटिव' बने। लेकिन, तस्वीर उतारने के ठीक पूर्व काँच पर मसाला फैलाना होता और इसके बाद उसे तुरत कैमरे में भर कर, गीले प्लेट पर ही तस्वीर उतार लेनी पड़ती थी। तभी सन् १८७० ई० में गीले प्लेटों की जगह, सूखे प्लेटों का इस्तेमाल होने लगा और इन सबका श्रेय है—जॉर्ज ईस्टमैन को।

अब लोगों ने सोचा कि फोटोग्राफी के काम और कला को सस्ता तथा सर्व-सुलभ बना लिया जाय। फल यह हुआ कि अन्वेषण के नाम पर कोडक-कंपनी को नकली रेशम और तत्संबंधी उत्पादनों को इस काम में शामिल करना पड़ा। घटना इस प्रकार हुई कि पारदर्शक पदार्थ की फिल्म ने, जो रासायनिक विधि से बनी थी, प्लेट के लिए काँच की जगह ले ली। और, तभी से कोडक-कंपनी ने इस वस्तु का आविष्कार करने का जी-तोड़ परिश्रम किया कि शीघ्र जल जाने वाली फिल्म की अपेक्षा रासायनिक पदार्थ

ही ऐसा हो, जिसके मिश्रण और प्रयोग से 'सेफ्टी' फिल्म तैयार की जा सके। और, इसके लिए 'सेल्यूलोस-एसिटेट' ही ऐसा रासायनिक पदार्थ था, जिसमें 'सेफ्टी' फिल्म की सृष्टि संभव थी। कोडक-कंपनी ने सन् १९२० में सेफ्टी फिल्म तैयार की; किंतु व्यवस्था की दृष्टि से यह अत्यंत महँगी प्रमाणित हुई।

कोडक-कंपनी को फिर एक नए आविष्कार का यश मिला। सन् १९३० ई० में बहुत ही कम लागत से 'सेल्यूलोस-एसिटेट' तैयार करने का तरीका निकल गया और तभी कोडक के प्रमुख अधिकारी ने घोषणा की—"यही है हमारी सफलता का मार्ग, जिसके द्वारा हम विजय की सीमा-रेखा तक पहुँच गए हैं।"

परमेश्वर जब व्यक्ति में पुरुषार्थ के बीज डालने लगता है, तब उसमें संस्कार का पावन जल भी डाल देता है, और यही कारण है कि पुरुषार्थ और संस्कार के संयोग से उसकी विकासात्मक प्रतिभा परिष्कृत एवं प्रस्फुटित होती चलती है। हमें यह जान कर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आज टेनसी ईस्टमैन कंपनी में ७७०० कर्मचारी दिन-रात काम कर रहे हैं। रासायनिक उत्पादनों का अब यह विशाल केंद्र हो गया है। चार सौ एकड़ जमीन पर कोडक-कंपनी का विस्तृत उद्योग-केंद्र शान से खड़ा है। हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि इस उद्योग-केंद्र के उत्पादन का केवल पाँचवाँ भाग ही कोडक के रोचेस्टर के फोटोग्राफी-उत्पादनों के काम आता है, शेष साढ़े ग्यारह करोड़ डालर का माल जैः रेशमी धागा, प्लास्टिक या अन्य रसायन-पदार्थ की बिक्री बाहर होती है। मोटरों के स्टीयरिंग ह्वील में लगने वाले प्लास्टिक-पदार्थ से लेकर मुर्गियों के भोजन की रासायनिक गोलियाँ तक यहाँ तैयार होती हैं।

आज के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने इस बात को सहर्ष स्वीकार किया है कि कोडक के मुकाबिले का इस क्षेत्र में कोई नहीं है। केवल बड़ी-बड़ी लेबोरेटेरीज़, रसायनशालाओं तक ही कोडक के उत्पादन की उपयोगिता नहीं है, बल्कि सेना-कार्य के लिए भी यह कंपनी आवश्यक उत्पादन करती है। फोटो उतारने की फिल्मों से तो कोडक के काम और विकास में असाधारण वृद्धि हुई है। लेकिन, कोडक का ट्रेड-मार्क प्रत्येक फोटोग्राफर अथवा इस व्यवसाय से संबंध रखनेवाले को अपनी ओर आकर्षित किये हुए है। हमें तो यह जान कर भी कम आश्चर्य नहीं होगा कि जॉर्ज ईस्टमैन ने पहले-पहल दो डालर के एक अति साधारण कैमरे से फोटोग्राफी का धंधा शुरू किया था। छुट्टियों का वक्त उसने आराम करने में कभी नहीं बिताया। और, उस युग में शौकिया फोटोग्राफी के लिए भी अंधेरे तंबू, रसायनों की बोतलें और अन्य उपकरणों की आवश्यकताएँ होती थीं। इन्हीं सारी चीजों के साथ खेलते-खेलते, महान ईस्टमैन एक रोज इसका जन्मदाता बन बैठा। कागज के आधार के बदले 'नाइट्रो सेल्युलोज' और अलकोहल से बने पारदर्शक फिल्म तैयार करने का सारा श्रेय कोडक-कंपनी को ही है। फोटोग्राफी के कार्य को सर्व-सुलभ और सर्वप्रिय बनानेवाला व्यक्ति कौन है? यह सवाल कभी उठे, तो इस व्यवसाय के इतिहास को जानवाले निश्चय ही जॉर्ज ईस्टमैन का नाम पहले लेंगे। यह तो उसी की कृपा है कि हमारे संसार के फिल्म-निर्माता उसी के द्वारा ईजाद किये गए सामानों से, बड़े-बड़े चित्रपट तैयार करके, लाखों रुपए की वार्षिक आमदनी कर रहे हैं। साथ ही, इससे जनता का भी पर्याप्त मनोरंजन हो रहा है। वरना, यह कहाँ संभव था कि विदेश की प्रसिद्ध नर्त्तकी ग्रेटा गॉर्बो को हम हिंदुस्तान

में नृत्य करते देख लें ? यह ईस्टमैन के द्वारा आविष्कृत फिल्म का ही तो प्रभाव है कि हम किसी महान कलाकार के नृत्य अथवा अभिनय को फिल्म में भर कर, चिर-सुरक्षित कर लेते हैं। कौन जानें, जब हम सिनेमा-हॉल में भारत के प्रिय और महान अभिनेता पृथ्वीराज को सिकंदर के रूप में, घोड़े पर सवार, झेलम नदी के तट पर, फौज को ललकारते हुए देख रहे थे, उस वक्त पृथ्वीराज बंबई में सो रहे थे, टहल रहे थे या अपने परिवार के साथ वार्तालाप कर रहे थे। लेकिन, फिल्म के निर्माण और विकास के कारण, हमारा महान कलाकार, हमारी आँखों के सामने, घोड़े पर सवार, अपनी कला के द्वारा ऐतिहासिक सिकंदर के रूप को साकार कर रहा था।

बंबई में रहते हुए भी सोहराव मोदी और पृथ्वीराज ने हमारी आँखों में जादू कर दिया था। इतिहास के पृष्ठ हमारे कानों में खरखरा रहे थे। देखो, सिकंदर वह खड़ा है, देखो पोरस वहाँ राज-सिंहासन पर बैठा है। हम बैठे-बैठे अपने दोस्त से कह रहे थे—सिकंदर महान था! पोरस महान था!! लेकिन, हमने यह नहीं कहा, "जॉज ईस्टमैन महान था। सच पूछिए, तो उसी के आविष्कार ने प्रोड्यूसर, डायरेक्टर, ऐक्टर्स और ऐक्ट्रेसेज को महान बनाया।"

हम ईस्टमैन के एक और अद्भुत गुण को जान लें। वह अपने पैसे का हिसाब-किताब रखने में बड़ा पक्का था। इस बात का प्रमाण उसके संग्रहालय में संग्रहीत उसके निजी कागजातों में मिलता है। उसने अपनी दैनिक डायरी में दिन-चर्या के साथ-साथ, दिन भर के खर्च की लागत भी लिखी है। उसने यदि थिएटर देखने के लिए टिकट खरीदा, तो उसकी भी

चर्चा डायरी में कर दी है। उसने यदि किसी परिचिता के लिए मिठाई खरीदी, तो उसे भी अपनी डायरी में नोट कर लिया। यहाँ तक कि फोटोग्राफी के काम के लिए भी उसने जो छोटे-छोटे खर्च किए, उसे भी अपनी डायरी में लिखा है। और, साथ ही ज्यों-ज्यों फोटोग्राफी का शौक बढ़ता गया, फोटोग्राफी पर खर्च बढ़ता गया, उसकी परिचिताओं की संख्या कम होती गई और सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि अपार धन-संपत्ति का स्वामी होते हुए भी, वह जीवन भर अविवाहित रहा। उसने किसी युवती को अपनी पत्नी बनने का मौका न दिया।

और, क्या आप इस बात का भी विश्वास करेंगे कि अपने रुपए-पैसे का हिसाब नियमित रूप से, कड़ा होकर डायरी पर नोट करनेवाला व्यक्ति, खुले हाथों दान करनेवाला भी होगा? वह अपनी माता का बहुत आदर करता था। उसकी पूज्यनीया माता का देहांत पचासी वर्ष की अवस्था में हुआ। अपनी माता की स्मृति में ईस्टमैन ने पौने दो लाख डालर की लागत से रोचेस्टर विश्वविद्यालय में थिएटर और संगीत-विभाग की स्थापना करा दी। वह जब तक जीवित रहा, विद्या और ज्ञान-विकास के लिए अपने धन का सदुपयोग करता रहा। जब तक वह मुक्तहस्त होकर कुछ दान न कर लेता; उसके मन का बोझ हल्का नहीं हो पाता था।

एक रोज की बात है। तब मेसाच्युसेट इंस्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के उच्चाधिकारी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उनके पास दो-दो बार दस-दस और बीस-बीस लाख डालर के गुमनाम चेक पहुँचे। यह घटना सन् १९१२ ई० की है। लेकिन, भला इतना बड़ा दान छिपे-रुस्तम कैसे हो सकता था? आखिर ईस्टमैन के एकाउण्ट से उतने डालर निकलते

और इंस्टिच्यूट के एकाउरट में जमा होते ही। एम० आई० टी० संस्था को, जिसने जगत-प्रसिद्ध शिल्प-शास्त्रीयों को अपने यहाँ फूलने-फलने का मौका दिया है, जॉर्ज ईस्टमैन ने लगभग दो करोड़ डालर दान में दे डाले। रोचेस्टर विश्वविद्यालय के साथ भी वही हमदर्दी! इस विश्वविद्यालय को ईस्टमैन ने विभिन्न शिक्षाओं के विकास के लिए, लगभग सवा करोड़ डालर दान में दिये। सन् १९२४ ई० में, उसने कोडक-कंपनी से प्राप्त अपने हिस्से के तीन करोड़ डालर तीन-चार शिक्षण-संस्थाओं को दान में दे डाले।

और, इसी प्रकार एक निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार उस महान मानव ने अपने जीवन का भी अंत कर दिया। मार्च, १४, दिन सोमवार, सन् १९३२ ई० को उसने हर रोज की तरह संगीत से अपना दिन प्रारंभ किया। सवा ग्यारह बजे दिन में उसने अपनी कंपनी के प्रमुख अधिकारियों को बुलवाया। इसके पहले उसने एक लंबी-सी वसीयतनामा लिखी थी। उन लोगों को साक्षी में रख कर, ईस्टमैन ने उस पर अपने हस्ताक्षर किये। इससे पहले ईस्टमैन रोचेस्टर विश्वविद्यालय मोटर में बैठ कर घूम आया था। खास कर, उसने अपने दान द्वारा संस्थापित संस्थाओं का—५५० एकड़ में बसे कोडक-नगर का निरीक्षण कर लिया था।

दीर्घ जीवन पाने के लिए वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों ने अनेक उपाय लिखे और बतलाये हैं। किसी ने हारमोन्स की रक्षा की व्याख्या की है, तो किसी ने दीर्घ जीवन-संकल्प की मनोवैज्ञानिक रीति-नीति बतलायी है। किसी ने ब्रह्मचर्य रहने की सलाह दी है, तो किसी ने नियमित भोजन और रहन-सहन की। कुछ लोगों ने यह भी कहा है कि मनुष्य जीवन में जितना अधिक आनंद भोग पाएगा, उतना ही अधिक वह जीवन की अवधि भी भोग सकता है। ईश्वर में विश्वास करनेवालों का ऐसा कथन है कि

हम तो परमेश्वर के हाथ के बनाये हुए खिलौने हैं, वह जब चाहे हमें तोड़-फोड़ दे सकता है। क्रिश्चियन धर्म के अनुसार आत्महत्या करना सबसे जघन्य पाप है-—भगवान की नजर में; क्योंकि आत्मा तो हमारी है नहीं; फिर उसकी हत्या करने का हमें क्या अधिकार है? आध्यात्म-वादी कहते हैं कि आत्मा का कभी हनन नहीं होता, वह पुराने शरीर को छोड़ कर, नए शरीर में प्रवेश करती है। और, स्टीफेन स्त्वैग एवं मोंपासा-जैसे लेखकों को इन सारी बातों का पता था, फिर भी उनलोगों ने आत्म-हत्या ही की। लेकिन उन्होंने क्यों आत्महत्या की, इसका पता लोगों को है, वे अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से ऊब गए थे। इस कारण जीवन के प्रति उनका मोह जाता रहा था।

मगर, जॉर्ज ईस्टमैन ने क्या सोचा, इसका पता किसी को न चला। उसने जीवन में इतनी कमाई कर ली थी कि यदि वह ऐसी ही एक दर्जन जिंदगी पा जाता, तो इसी मौज और ठाट का जीवन बिता सकता था। कहा जा सकता है कि वह अविवाहित था। किंतु, यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि केवल अविवाहित रहने के कारण, कोई आत्महत्या कर ले। संसार में ऐसे लाखों लोग हुए हैं, जो जीवन भर अविवाहित रहे और जीवन के हर क्षण बड़े सुख से गुजारे।

तो फिर क्या! कहा जा सकता है कि उसके जीवन में अब कोई ऐसी खास आशा नहीं थी, जिसके लिए वह जीना चाहता हो, कोई ऐसी आकांक्षा नहीं रह गई थी, जिसके लिए वह संघर्ष करने को तैयार हो, कोई ऐसा उद्देश्य भी नहीं रह गया था, जिसकी सफलता के लिए उसे योजनाएँ बनानी थीं। निष्कर्ष यह निकलता है कि उपरोक्त कारण ही ऐसे

थे, जिन्होंने उसे इस बात के लिए विवश किया कि वह जीवन-संकल्प को छोड़ कर, मृत्यु-संकल्प के लिए तैयार हो जाए। और, सचाई यह है कि निर्बल व्यक्तित्व वाले मृत्यु का आलिंगन करने को शीघ्र तैयार नहीं होते। ईस्टमैन का व्यक्तित्व निर्बल कहाँ था? और, इसीलिए उसने जीवनेच्छा को अपने मन से ऐसे उतार फेंका, जिस प्रकार सर्प अपने केंचुल उतार फेंकता है।

इधर लगभग साल भर से जॉर्ज ईस्टमैन की तबियत कुछ खराब रहने लगी थी। वह अस्वस्थता का अनुभव करने लगा था।

एक रोज की घटना है कि उसने अपने डाक्टर से पूछा, "डाक्टर, यह बताओ कि मनुष्य का हृदय ठीक-ठीक किस जगह पर होता है?" और अनजान डाक्टर ने, जिसे मालूम नहीं था कि जॉर्ज ईस्टमैन के इस प्रश्न का क्या अभिप्राय है, उँगली से हृदय का घेरा बतला दिया। वसीयत पर साक्षी बना कर, कोडक के अधिकारी ज्योंही ईस्टमैन के मकान से बाहर निकले कि बड़े जोरों से पिस्तौल की आवाज हुई। ईस्टमैन ने इस प्रकार अपने महान जीवन का अंत कर दिया। टेबुल पर सामने ही एक कागज पड़ा था, जिस पर ईस्टमैन ने लिखा था—

"मेरा काम पूरा हुआ। अब मेरी आवश्यकता नहीं।"

—जी० ई०

नोबेल-पुरस्कार का जन्मदाता

मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही उसे अपनी मृत्यु का आभास हो चुका था। वह अपनी नब्ज स्वयं देखा करता और लोगों से कहता कि अब उसे संसार

में चंद रोज ही रहना है! मरने के पहले उसके पास कोई वकील नहीं फटक सका। और, जब मृत्यु के बाद उसका वसीयतनामा देखा गया, तब पता चला कि उसने अपनी अवशेष संपत्ति से अपने भतीजों को पाँच-पाँच हजार पौंड देने की इच्छा प्रकट की है। वसीयतनामे में उसकी शेष संपत्ति की व्यवस्था निम्न प्रकार से करने का निर्देश था :—

"मेरी अवशेष संपत्ति के सदुपयोग के लिए एक ट्रस्ट बने और ट्रस्टी-गण संपत्ति को सुरक्षित रख कर एक स्थायी कोष का निर्माण करें। और, उस संपत्ति की सूद से प्रति वर्ष उन व्यक्तियों को पारितोषिक प्रदान किया जाय, जिन्होंने वर्ष में सबसे अधिक मानव-जाति के कल्याण का कार्य किया हो।"

अपनी मृत्यु के कुछ ही सप्ताह पूर्व, अपने वसीयतनामे के अंत में, इन पंक्तियों का लेखक स्वीडन में पैदा हुआ। उसके दादा फौज में डाक्टर थे।

पिता महोदय स्टाकहोम नगर में विज्ञान के प्रोफेसर थे। उधर देखिए, प्रयोगशाला में इस बालक का पिता नए-नए विस्फोटक पदार्थों का अनुसंधान कर रहा है। रात्रि का समय है। ज्ञान-विज्ञान की खोज करने वालों के लिए कैसा दिन, कैसी रात! उनके लिए तो सात जिंदगी की अवधि भी एक जिंदगी के बराबर नहीं होती। और, एक ही जिंदगी में वे अपनी बुद्धि की ऐसी करामातें दिखला जाते हैं, जिन्हें साधारण लोग सात जिंदगी में भी नहीं दिखला सकते।

और, बड़े जोरों का विस्फोट हुआ—

धड़ाम....गड़गड़ डम्....धड़ाम....।

विस्फोट के प्रयोग ने बलिदान लिया। वैज्ञानिक के कई असिस्टैण्ट धूल में लोट गए। किसी की आँखें निकल गईं, किसी का पेट फट गया, तो किसी का सारा मुँह झुलस गया। विस्फोटक-शक्ति ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। हथेली पर जान रखने वाले, विज्ञान के भूखे, प्राणाहुति देकर चल दिए। और, तब? तब उस बालक के पिता का मन खिन्न हो गया। मन इतना खिन्न हो गया कि स्टाकहोम उसे नर्क-सा प्रतीत होने लगा। घर में आकर धर्मपत्नी से कहा, "यहाँ मन नहीं लगता। चलो, अब कुछ रोज रूस चल कर रहें।"

धर्मपत्नी ने कोई आपत्ति नहीं की। सारा परिवार रूस चला गया। उन दिनों रूस पर अशांति के बादल मँडरा रहे थे। क्रीमियन वायुयान रूस के आकाश पर पत्ती-दल की भाँति दौड़ लगा रहे थे। चौबीस घंटे अनवरत् बम-वृष्टि हो रही थी। ऐसे मौके पर रूस ने इस वैज्ञानिक से लाभ उठाया। तरह-तरह के विस्फोटक पदार्थ बनवाये। यह सही है कि इस कार्य के बदले,

रूस की सरकार, इस वैज्ञानिक को आर्थिक सहायता देती रही। लेकिन, इधर क्रीमियन-युद्ध समाप्त हुआ और उधर वैज्ञानिक का हृदय स्वदेश लौटने के लिए छटपटाने लगा। अंततः, वैज्ञानिक स्वदेश लौट आया। यहाँ आकर वैज्ञानिक ने अपनी नई फैक्टरी स्थापित की। कार्य पूर्ववत् चलने लगा। और, अत्यधिक कार्य-व्यस्त रहते हुए भी वैज्ञानिक अपने पुत्र को विज्ञान की शिक्षा देता रहा।

वैज्ञानिक का पुत्र बाल्यकाल में अत्यंत ही दुर्बल था और अक्सर बीमार रहा करता। लेकिन, बच्चे को अपनी माता से बहुत प्रेम था। माता के हृदय में भी अपने पुत्र के प्रति मातृ-सुलभ-आस्था संचित थी कि उसका पुत्र एक असाधारण व्यक्ति होगा। वह अपने पुत्र को संसार के महानतम व्यक्ति के रूप में देखना चाहती थी। और, शायद इसी उद्देश्य से वह बालक, अपने माता-पिता के साथ मात्र सत्रह वर्ष रह कर, विज्ञान की उच्च शिक्षा के लिए अमरीका चल पड़ा। वहाँ न्यूयार्क में बालक के पिता के एक मित्र ख्यातिप्राप्त इंजीनीयर थे। बालक अब किशोर हो चुका था और वही किशोर उपरोक्त इंजीनीयर की देख-रेख में रह कर, जहाज के एंजिन बनाने का काम सीखने लगा।

प्रतिभा शीघ्र ही पल्लवित-पुष्पित हो गई। एंजिन बनाने का काम सीख लेने मात्र से उसे संतोष न हुआ। दिल ने कहा, "ओ महान व्यक्ति! प्रतिभा किसी की जागीर नहीं। तुम्हारे पास प्रतिभा है, तो उसे माँज-सँवार कर अपनी मौलिकता को चमकने का मौका दो। तुम चुपचाप पुरानी लकीर पर कलम घीसते रहोगे, तो संसार तुम्हें भला किस रूप में याद करेगा? विज्ञान को आखिर तुम्हारी कोई मौलिक देन तो होनी ही चाहिए।"

और, तब वह किशोर वैज्ञानिक स्वदेश लौट आया। यहाँ आकर उसने अपनी एक फैक्टरी खोलने का विचार किया। लेकिन अनुसंधान-कार्य के लिए उसे शीघ्र ही रूस चला जाना पड़ा। फिर, वहीं उसने एक ध्वंसकारी रसायन का आविष्कार किया। और, इस ध्वंसकारी रसायन का आविष्कार होते ही, संसार के लोगों ने एक बार उसका नाम जान लिया। संसार के गएय-मान वैज्ञानिकों की ज़बान पर उसका नाम चढ़ गया, उसके आविष्कार का नाम 'नोबेल का संहारक तेल' और आविष्कारक का पूरा नाम-अल्फ्रेड नोबेल।

हाँ, वही अल्फ्रेड नोबेल !

जिसकी संचित धन-राशि के व्याज मात्र से मनीषी साहित्यकारों और मानवीय उत्कर्ष की दिशा में निस्पृह चिंतनशील कार्य करने वालों को अर्द्ध शतक से, लाख रुपए से भी अधिक का पुरस्कार मिलता आ रहा है—नोबेल-पुरस्कार !

अल्फ्रेड नोबेल के इस आविष्कार से संसार के वैज्ञानिक चकाचौंध में पड़ गए; क्योंकि इस तेल की संहारक-शक्ति इतनी तीव्र और प्रबल थी कि इससे अनायास ही सारी सृष्टि को महान लाभ नहीं, बल्कि मृत्यु की तरह भयानक क्षति पहुँच सकती थी। लेकिन, अल्फ्रेड नोबेल का उत्साह इससे भंग नहीं हुआ। उसने एक विशाल कारखाना खोलना चाहा, जिसमें इस प्रकार के तेल का विशाल उत्पादन हो सके। फ्रांस की गद्दी पर उन दिनों नेपोलियन तृतीय था। उसने नोबेल को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कीं। लेकिन, वैज्ञानिकों के बीच इस नवआविष्कृत तेल का पूरा प्रचार होने लगा था। फल यह हुआ कि नोबेल जब इस तेल का नमूना लेकर अमरीका गया, तब उसे वहाँ के होटलों में ठहरने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी।

होटल के मालिकों अथवा मैनेजरों से उसने अपना असली परिचय दिया—"मैं स्टाकहोम से आया हूँ। मेरा नाम अल्फ्रेड नोबेल है।"

"तो क्या आप वही अल्फ्रेड नोबेल हैं, जिन्होंने विश्व-संहारक तेल का आविष्कार किया है?" प्रश्न किये जाते।

"जी।" नोबेल उत्तर देता।

"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

"मुझे होटल में ठहरने के लिए एक कमरा चाहिए।" नोबेल कहता।

"जी, हमें खेद है कि आप-जैसे व्यक्ति को हम अपने होटल में स्थान नहीं दे सकते।"

"आखिर क्यों?" नोबेल पूछता।

उत्तर मिलता, "आपके आविष्कार से मानव-समाज का अहित ही तो हो सकता है। आपने प्राणिमात्र के लिए भला क्या आविष्कार किया है?"

इस प्रकार कई दिनों तक नोबेल को अनेक होटलों के दरवाजे खटखटाने पड़े और अंततः होटलों में ठहरने का स्थान नहीं मिलने पर, लाचार नोबेल को अपने भाई के एक मित्र के यहाँ, ठहरना पड़ा। एक सहायक मिल गए। उनसे सहायता और सहानुभूति दोनों मिली। वे व्यक्ति थे—डा० बैंडमैन। उनकी सहायता पाकर नोबेल ने एक फैक्टरी खोली। फैक्टरी का काम चल निकला। फिर तो इतनी तरक्की हो गई कि नोबेल ने कुछ ही दिनों में, यूरोप के सभी देशों में अपने कारखाने खोल लिये। मिट्टी के तेल और नकली गटापार्चा के काम से नोबेल ने करोड़ों पौंड कमाये।

विचारों का वेग भले ही न बदले, विचारों की व्यवस्था अवश्य बदलती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कोई ऐसा व्यक्ति आता है, जो उसकी जीवन-

धारा को बदल देता है, जिसकी बातों का प्रभाव उसके हृदय पर ध्रुव-सत्य की तरह पड़ता है। अल्फ्रेड नोबेल हमेशा एकांत में रहने का आदी हो गया था। बाहर के लोगों से वह बहुत कम मिलता-जुलता और अपना सारा समय अनुसंधान-कार्य में बिताता था। दिन-रात प्रयोगशाला में काम करते रहने के कारण, जो जहरीली गैस और धुआँ से भरी रहती थी, अल्फ्रेड का स्वास्थ्य गिरने लगा। सिर में प्रायः चौबीस घंटे दर्द रहता। इस निरंतर दर्द से उसका मन खिन्न होने लगा। फिर भी अल्फ्रेड अपने काम में जुटा रहता था। इन्हीं दिनों उसके जीवन-तरु को हवा का एक नया झोंका लगा। विचारों की डालियाँ हिलने लगीं। भावना की पत्तियाँ अपनी खरखराहटों के द्वारा मानवता के संगीत की माँग करने लगीं; क्योंकि अल्फ्रेड ने एक उपन्यास पढ़ा :—

'हथियार रख दो।'

इस उपन्यास की लेखिका थी, एक जर्मन विदुषी महिला। नाम था—वरथावन सदर। इस उपन्यास को पढ़ कर समाप्त करते ही, अल्फ्रेड नोबेल के दिल में विश्व-शांति की भावना घर कर गई। अल्फ्रेड ने सोचा, हथियार की विजय मानवता की पराजय है, प्रेम की पराजय मानवता की जय है। और फिर जो व्यक्ति बिगड़ कर सम्हलता है, वह तो दो बुद्धिमान व्यक्ति के बराबर होता है।

अल्फ्रेड नोबेल के वसीयतनामा के अनुसार नोबेल-पुरस्कार के लिए पाँच पुरस्कार निश्चित किए गए। एक रसायन-शास्त्र के लिए, दूसरा भौतिक शास्त्र के अनुसंधायक के लिए, तीसरा चिकित्सा अथवा शरीर-विज्ञान के लिए, चौथा साहित्य के लिए और पाँचवा उस व्यक्ति के लिए, जिसने राष्ट्रों

की एकता और विश्व-शांति के लिए वर्ष में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया हो। पुरस्कारों के वितरण के लिए बड़ी अच्छी व्यवस्था की गई। इन पुरस्कारों के संबंध में निर्णय करने का भार संसार की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक एवं साहित्यिक संस्थाओं को दिया गया।

आपको शायद यह जान कर आश्चर्य होगा कि सब मिला कर साल भर में इस दान-कोष का व्याज पाँच-छह लाख रुपये होते हैं। इस पुरस्कार की सारी व्यवस्था पाँच सदस्यों की एक समिति करती है और सभापति का चुनाव स्वीडन के महाराज स्वयं करते हैं। साहित्यिक-पुरस्कार के निर्णय में स्वीडिश अकादमी का हाथ रहता है। इस संस्था का संबंध संसार के मूर्द्धन्य साहित्यकारों से है। इस संस्था की देख-रेख में एक विश्व-प्रसिद्ध पुस्तकालय का भी संचालन होता है। पुरस्कार-समिति के पास प्रति वर्ष पहली फरवरी तक प्रस्ताव पहुँच जाते हैं। सभी नियमोपनियमों का पालन करते-कराते पूरे साल भर का वक्त लग जाता है और तब कहीं जाकर इसका निर्णय दिसंबर में होता है।

अभी तक यह पुरस्कार वृद्ध विद्वानों को ही मिलता रहा है। इटली के प्रसिद्ध कवि काटडू को यह पुरस्कार उस अवस्था में मिला, जब कि वे इतने वृद्ध हो गए थे कि वे उठ भी नहीं सकते थे। पुरस्कार प्राप्त करने के लिए स्वीडन के महाराजा ने स्वयं अपना प्रतिनिधि भेजा था। सौभाग्य कहें अथवा दुर्भाग्य की बात, कि पुरस्कार प्राप्त करने के दो माह बाद ही उनकी मृत्यु हो गई।

१० दिसंबर, सन् १८६६ ई० !

इसी रोज महान अल्फ्रेड का महाप्रयाण हुआ था। और, इसीलिए उस महान व्यक्ति के महाप्रयाण-दिवस को चिरस्मरणीय बनाने के लिए, पुरस्कार

की घोषणा जब एक वार हो जाती है, तब उसके विरुद्ध लाख मतभेद अथवा आंदोलन होने पर भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हो सकता। सचाई तो यह है कि इस पुरस्कार के प्रदान करने में किसी प्रकार का पक्षपात ही नहीं होता। पुरस्कार-निर्णय-समिति के सदस्य अपने विषय के संसार-प्रसिद्ध विद्वान होते हैं। इस संबंध में किसी प्रकार की सिफारिश का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता। वे बिलकुल तटस्थ होकर प्रस्तावित उमीदवार के महान कार्य और कृतियों को देखते हैं।

विश्व-कवि रवींद्रनाथ ठाकुर को उनकी प्रसिद्ध काव्य-पुस्तक 'गीतांजलि' पर यह पुरस्कार मिला था। भौतिक विज्ञान में डा० सर चन्द्रशेखर वेंक्ट रमण को भी यह पुरस्कार मिल चुका है। घोषणा के साथ ही पुरस्कार की राशि भेजी जाती है। साथ ही, निर्णायक-समिति की ओर से एक सम्मान-पत्र और एक स्वर्ण-पदक भी। इस पदक पर एक ओर महान अल्फ्रेड नोबेल की मूर्त्ति रहती है और दूसरी ओर पुरस्कृत व्यक्ति के संबंध में कुछ प्रशंसात्मक शब्द !

कितनी दूर : कितना पास

पत्र-संपादक ने उसकी ख्याति रोक ली। उसकी सफलता का संवाद उसने दाब लिया और उसके संबंध में एक भ्रामक सूचना प्रकाशित की—

"उसे केवल अपनी सफलता का भ्रम हुआ है। इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आकाश में वायु-परिवर्त्तन के कारण भी 'एस'-जैसे शब्द का सुनायी पड़ना संभव है।"

इतना ही नहीं, संपादक ने अपने विशेष प्रतिनिधि को फटकारते हुए चेतावनी दी—"उसके विषय में तुमने जो सूचनाएँ भेजी हैं, वे विश्वास्य नहीं हैं। यों ही उड़ती खबरें भेज कर पत्रकारिता की प्रतिष्ठा न भंग करो।"

लेकिन, वैज्ञानिक इससे घबड़ाने वाला नहीं था। वह जानता था कि वास्तविकता क्या है। उसने यह मान लिया कि उसकी ख्याति को तब तक संसार के लोग अपनी स्वीकृति नहीं देंगे, जब तक वह अपनी सफलता का अधिक-से-अधिक प्रमाण न देगा। और, वह दूसरे रोज अमरीका के लिए चल पड़ा। हाँ, इस बार उसने लंबी खबरें भेजने की व्यवस्था कर ली, ताकि उसकी सफलता को वायुमंडल के परिवर्त्तन के नाम पर दबाया न जा सके; क्योंकि उसे अपनी सफलता में तनिक भी संदेह नहीं था।

अटलांटिक सागर की अथाह जल-राशि !

ज्वार-भाटे आ रहे, नीला जल ठाटें मार रहा !!

विशाल सामुद्रिक जहाज ऊँची-नीची लहरों में डोल रहा !!!

अभी स्टेशन से जहाज पाँच सौ मील की दूरी पर है। जहाज की प्रयोगशाला में वैज्ञानिक का सहयोगी रेम्सडेन टेलीफोन का चोंगा पहने मुस्कुरा रहा है। सफलता की दिव्य ज्योति दिखलायी पड़ रही है। निश्चित समय पर खबरें ठीक-ठीक आ रही हैं। ओह, और रेम्सडेन अब अपना धीरज तोड़ रहा है। वह अपनी खुशी की सीमा को असीमित देख रहा है। खुशी को बाँध रखना उसके वश की बात नहीं रह गई। और, वह प्रयोगशाला से बाहर निकल आया। फिर देखिए, वह जहाज के दोमंजिले, तिमंजिले पर दौड़-दौड़ कर चिल्ला रहा है—

"सुनो, सुनो। अभी हमारा जहाज स्टेशन से ५०० मील की दूरी पर है। फिर भी समाचार सही-सही और ठीक समय पर आ रहा है।"

फिर भी मुसीबत है। जहाज के कर्मचारी भी एक जिद्दी हैं, जो रेम्सडेन के इस कथन पर विश्वास करने को तैयार नहीं। उनलोगों ने एक स्वर से कहा, "लेकिन हमलोगों ने तो नहीं सुना।"

"क्या तुम सभी सुनता चाहते हो?"

"हाँ, हम सभी सुन लेना चाहते हैं।"

अब जहाज की प्रयोगशाला में नजर दौड़ाइए। सभी कर्मचारी इकट्ठे हो गए हैं। एक-एक कर सबको आती हुई खबरें सुनने का मौका दिया जा रहा है। सबकी आँखें प्रसन्नता से भर आईं, सबका चेहरा खिल उठा। संवाद स्पष्ट रूप से सही-सही आ रहा था। और अब देखिए, जहाज का मीटर। स्टेशन से जहाज १५०० मील की दूरी पर आ गया है। खबरें स्पष्ट रूप से और सही-सही आ रही हैं।

वैज्ञानिक के इस आविष्कार ने संसार की दूरी पर विजय पा ली। यह कहना मुश्किल हो गया किस देश से हम कितनी दूर, कितने पास हैं। पौने छह फीट लंबा, दोहरा शरीर, बहुत शांत और गंभीर, कानों में हमेशा टेलीफोन का चोंगा धारण किए रहनेवाला यह महान वैज्ञानिक था— गुग्लिएल्मो मारकोनी!

उस पर इटली को गर्व है!

उस वैज्ञानिक पर संसार को गर्व है!!

उसके आविष्कार पर विज्ञान-जगत को गर्व है!!

माता का नाम मिसेज ऐनी जेमसन, पिता का नाम गिसेप मारकोनी। संसार में इतालियन संगीत प्रसिद्ध है। मिसेज ऐनी जेमसन इतालियन संगीत की रानी थी।

बोलोगना की गौरवमयी भूमि, सन् १८७४ ई०।

मिसेज एनी जेमसन ने असाधारण पुत्र पैदा किया और यह पुत्र था, जो बहुत छोटी उम्र से ही रसायन-शास्त्र का प्रेमी हो गया। संयोग अच्छा

था। मारकोनी ने भारत में पैदा होने की भूल न की। अन्यथा, उसे भी विकास पाने का मौका न मिलता। और यदि मौका मिलता भी, तो श्रीनिवास रामानुजम् की तरह अपना समस्त प्रकाश बिखेर कर, थोड़ी ही उम्र में लुप्त हो जाता। भारत तो प्रतिभाओं के साथ मज़ाक करता रहा है। प्रतिभा-शालियों के मरने पर भारत एक अच्छा खासा स्मारक बना सकता है, किंतु जीते-जी प्रतिभाशाली व्यक्ति यहाँ एक अच्छे किराये के मकान में भी नहीं रह सकते। और, न जानें, भारत ने अपनी परखहीनता के कारण कितने प्रतिभा-रत्नों को खो दिया है। इसकी सूची पेश करना वश की बात नहीं है।

माता में संगीत की प्रतिभा थी, पुत्र में विज्ञान की। इटली का समाज बौद्धिक विकास की ओर उन्मुख था। मारकोनी के आगे बढ़ने का प्रबंध किया गया। एक रसायन-शास्त्र का शिक्षक रखा गया और मकान के ही एक छोटे भाग में छोटी-सी प्रयोगशाला बना दी गई। उसकी प्रतिभा को निखार मिला। किशोर मारकोनी उच्च शिक्षा के लिए बोलोग्ना विश्व-विद्यालय में भरती हुआ। एक व्यक्ति की सलाह पर उसने रसायन-शास्त्र की पढ़ाई छोड़ दी और विद्युत-प्रणाली को ही अपनी शिक्षा का अभीष्ट बनाया।

इस समय मारकोनी की अवस्था कुल सोलह साल की थी और उसने सोच लिया था कि बिना तार के भी तार की तरह बातें की जा सकती हैं—संवाद भेजे जा सकते हैं। कुछ वैज्ञानिकों के कथनानुसार यह सही है कि मारकोनी के पूर्व भी कुछ लोगों ने बेतार के तार द्वारा संदेश भेजे थे, लेकिन उनके वैज्ञानिक तरीके में कुछ इस प्रकार की कमी थी कि उन्हें वास्तविक सफलता नहीं मिली थी। मारकोनी ने सर्वप्रथम अपने आविष्कार

का प्रयोग अपनी जमींदारी में करना प्रारंभ किया। लेकिन, तब कितनो सीमित सफलता मिली थी ?

पहले कुछ इंच !

फिर कुछ गज !!

आगे तो कई मील की सफलता !!!

सबसे पहले सन् १८९६ ई० में उसने अपने बेतार के तार को पेटेंट-कराया। और, तभी वह पहुँचा इंगलैंड। पोस्टआफिस के अधिकारियों को अपार भीड़। लंदन के चीफ टेलीग्राफिक इंजीनीयर के सामने उसने बेतार के तार की सफलता प्रमाणित की। दो मील, चार मील, छह मील, दस मील और अब सुनिए बत्तीस मील।

और, आप देख रहे हैं, सामने वह कौन व्यक्ति आ रहा है? अभी-अभी तो वह अपनी कार से उतरा है। देखिए न, वह तो मारकोनी के कार्यालय की ओर ही चला आ रहा है। चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ हैं। छह फुट का लंबा जवान, गठा शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें। देखिए, वह मारकोनी के पास पहुँच गया। उसने जेब से पैसे निकाले और समाचार भेजने का पूरा खर्च देकर, अपनी खबर भिजवायी है। आपने पहचाना, यह व्यक्ति है कौन ?— यह है प्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड केलविन।

अब जरा इस वैज्ञानिक के आविष्कार की महान उपयोगिताओं पर गौर करें।

सागर की विशाल छाती !

जहाज का पेंदा धोखा दे रहा है। उसमें एक छेद हो गया है। खतरे का भोंपू बजने लगा। एक दूसरा जहाज उसे देख रहा है कि वह जहाज

सागर की विशाल छाती में समाना चाहता है—जल-समाधि लेना चाहता है। लेकिन, समुद्र में डूबते हुए एक जहाज को अकेला एक दूसरा जहाज नहीं बचा सकता। मारकोनी के इस यंत्र को जहाज ने इस्तेमाल किया। किनारे पर अनेक जहाज खड़े थे। मारकोनी के यंत्र से उन जहाजों को खबर दी गई। और, अब जरा उधर देखिए।

जहाज को बचाने के लिए जहाजों का काफिला चल पड़ा। दर्जनों मस्तूल धुआँ उगलते हुए इधर ही चले आ रहे हैं। और ज़रा अब गौर करके देखिए। डूबते हुए जहाज को दर्जनों जहाजों ने चारों ओर से घेर लिया। जहाज बचा लिया गया। अंत में मारकोनी के इस यंत्र की उपयोगिता इस प्रकार बढ़ी कि ब्रिटिश नौसेना-विभाग ने तुरत इसे अपना लिया।

सन् १६०० ई० की बात है। सफलता का महान वर्ष! सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर फ्लेमिंग की सहायता से कार्नवाल के पोल्सु नामक स्थान में बेतार के तार द्वारा संवाद भेजने का एक अस्थायी स्टेशन बनाया गया। ज्ञान-विज्ञान की खोज में मौत से जूझनेवाला महान वैज्ञानिक मारकोनी जहाज पर रवाना हुआ। उसके साथ उसका सहायक था—वैज्ञानिक कैम्प। जहाज पर सवार होते समय मारकोनी ने सोच लिया था, कि चाहे जो हो, इस बार वह अटलांटिक सागर पर विजय प्राप्त करके रहेगा। इसकी सफलता के लिए उसने न्यूफाउंडलैंड में भी एक अस्थायी स्टेशन बनवाया। तय किया गया कि निश्चित समय पर हर रोज अँगरेजी का एक शब्द भेजा जाय। और अब देखिए, सागर की विशाल छाती को चीरता हुआ मारकोनी का जहाज चला जा रहा है। समुद्र का जल ठाटें मार रहा है। लहरें आती हैं और चली जाती हैं। सागर के गहरे नीले जल को चीरता हुआ

जहाज बढ़ रहा है। जहाज की प्रयोगशाला में, मारकोनी कान से चोंगा लगाये खड़ा है। पास ही उसका सहायक वैज्ञानिक कैम्प दम साधे खड़ा है। मारकोनी भी एक है, जो असफलता की उमीद भी नहीं करता। एकाएक वह अपने सहायक कैम्प से कहता है—"ज़रा ठीक से सुन कर देखो, कोई आवाज़ आ रही है; क्योंकि यही निश्चित समय है।"

और, कैम्प ने यंत्र उठाया। अँगरेजी का एस शब्द सुनायी पड़ रहा है–निरंतर। इस प्रकार लगातार मारकोनी जब तीन रोज तक यह शब्द सुनता रहा, तब उसने कुछ अखबार वालों को अपनी सफलता की सूचना प्रकाशित करने की खबर दी।

फिर अब तो इस यंत्र की उपयोगिता संसार के लोगों से छिपी नहीं है। हमने संसार की दूरी पर विजय पा ली है। तो आप समझ रहे हैं कि रेडियो ने संसार को कितना छोटा बना दिया है! संसार के महान नेता देश के किसी कोने से रेडियो पर बोलते हैं और उनके शब्द संसार के कोने-कोने में, बैठे हुए लोग सुना करते हैं। लाखों मील की दूरी तक उनका संदेश मिनटों में पहुँच जाता है।

कल्पना कीजिए, आप अमरीका में हैं—होनोलूलू हवाई अड्डे से आप उड़े और आपको सनफ्रांसिस्को जाना है। हवाई जहाज पाँच सौ फीट की ऊँचाई से पंद्रह सौ फीट की ऊँचाई पर आ गया। एक इंजन में आग लग गई। इंजन का थोड़ा भाग नीचे की ओर लटक गया।

अब यह भी पता लगा कि पेट्रोल भी बहुत थोड़ा बचा है। घनी, अँधेरी रात है। सभी यात्री घबड़ा गए। आपके सामने लाल बत्ती जली। सूचना मिली—'खतरा'। और, साथ ही, परिचारिका ने आपने आगे

लाइफ-बेल्ट बढ़ाया। ऐसी स्थिति में आप क्या कर सकते हैं? अपनी इस दुखद यात्रा के लिए अफसोस और मृत्यु का आवाहन !

मगर, जरा ड्राइवर को देखिए। वह तो कानों में इयर-फोन लगाये, सनफ्रांसिस्को से बातें कर रहा है। सनफ्रांसिस्को यहाँ से हजारों कोस दूर है। और, सनफ्रांसिस्को का एयर-अफसर ड्राइवर को सांत्वना दे रहा है, उचित परामर्श दे रहा है—उसे क्या करना चाहिए।

ड्राइवर जो यह सहायता या निर्देश पा रहा है, क्या इसमें मारकोनी का साधारण योग है, क्या इस अनंत अंधकार में मारकोनी के महान वैज्ञानिक आविष्कार का ही अस्तित्व प्रकाश का काम नहीं कर रहा है?

महान मारकोनी को अगर हम भूलते हैं, तो हम मानवता के मुँह पर तमाचे मारने के अपराधी प्रमाणित होते हैं। उस महान मारकोनी के लिए किसका हृदय श्रद्धा से नहीं भर आवेगा, जिसे अभिमान छू तक नहीं गया था, जिसकी मुस्कान जादू भरी होती थी, जो छोटे-से-छोटे वैज्ञानिक से भी दिल खोल कर मिलता था। जब तक संसार में विज्ञान का अस्तित्व कायम है, तब तक हमारा महान मारकोनी एक महान वैज्ञानिक के रूप में अमर रहेगा।

●

पौधों का मित्र : पौधों का डाक्टर

"नशीली दवा छिड़कने से फूल के पौधे प्राणहीन हो रहे थे और वे प्राणिमात्र की तरह तड़प रहे थे। लेकिन, पूर्ण देहांत के पहले ही उन पौधों की जड़ में नशा-निरोधक दवा का प्रयोग किया गया और पौधे पुनः अपनी पूर्वस्थिति में आने लगे······।"

ये शब्द हैं, एल्डुअस हक्सले के, जो पौधों के उस मित्र, पौधों के उस डाक्टर का विज्ञान-मंदिर देखने गए थे। उस भारतीय वैज्ञानिक ने संसार के महान वैज्ञानिकों के समक्ष प्रमाणित कर दिया था कि पौधे भी साँस लेते हैं, पौधे भी रोते हैं, वे भी दुःख-सुख का अनुभव करते हैं, पौधे भी देखते हैं। पौधों

को भी बुखार लगता है, पौधों के भी नब्ज होती है और यहाँ तक कि जीवधारियों से उनका अनुभव अत्यधिक संवेदनशील होता है। बिजली का धक्का लगने पर वे भी कराह उठते हैं, उनके अंग भी शिथिल हो जाते हैं।

चलिए, हम आपको उस महान वैज्ञानिक के विज्ञान-मंदिर में ले चल रहे हैं। आइए, श्री एल्डुअस हक्सले के साथ हमलोग भी विज्ञान की उस प्रयोगशाला को देख लें, जिसने मानव को इस बात की शिक्षा दी है कि अपने स्वार्थ के लिए पौधों को भावनाहीन, प्राणहीन समझ लेना, केवल हमारी स्वार्थपरता का प्रतीक है।

हम आ गए, विज्ञान-मंदिर में। इस मंदिर का पुजारी हमारे साथ हो गया। पहले हमलोग इस वैज्ञानिक पुजारी के दर्शन तो कर लें, जिसने विज्ञान की अनंत साधना से, विज्ञान-विश्व में अपना शीर्ष-स्थान बना लिया है, जिसने पौधों को अपना दोस्त समझा, मनुष्य दोस्त से कम नहीं।

सुंदर चेहरा, जिसे देखते ही आदमी प्रभावित हो जाए।

नाटा कद, लेकिन सिद्धांत और विचार बहुत लंबे, बहुत ऊँचे।

वैसे सिद्धांत, वैसे विचार, जिनसे विज्ञान-लोक को प्रकाश मिला। घुँघराले बाल, भरे हुए गाल, प्रशस्त ललाट। मानवता और विनम्रता के प्रतीक। ज्ञान के बोध से लदा व्यक्तित्व विनम्र हो ही जाता है। बाढ़ तो नदियों में आती है, समुद्र में बाढ़ आते किसने देखा? छोटे लोगों में अभिमान होता है। वे लोग जो वास्तव में बड़े होते हैं, उनमें आपने अभिमान की छाया तक न देखी होगी।

हम विज्ञान-मंदिर में आ गए। तरह-तरह के पौधे, तरह-तरह के फूल। यंत्र, बिजली, ग्राफ-पेपर वगैरह। कुछ रासायनिक द्रव। देखिए, पुजारी हमें अच्छी तरह समझाने में असमर्थ हो रहा है। इसीलिए शायद बोलते-बोलते वह हकला भी रहा है। जिंदगी भर की साधना के बाद जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया जा सका है, उसे आसानी से हम ज्ञानविहीन व्यक्तियों को समझा देना, भला आसान कैसे होगा ? पद्धति, सैद्धांतिक आधार और प्रयोगजन्य परिणाम को वह हमें समझा रहा है। वह देखिए, एक धूमिल काँच पर, एक पौधे के क्रमिक विकास की रेखाएँ, एक सूई के द्वारा उभर रही हैं। और, अब देखिए। विज्ञान के पुजारी ने उस पौधे को बिजली का साधारण-सा धक्का दिया और पौधे के अंग-प्रत्यंग सिहर उठे।

और आइए, अब उधर देखिए, क्या हो रहा है। वह पौधा अपना भोजन ग्रहण कर रहा है। देखिए, वह किस तरह अपनी साँस के द्वारा ऑक्सिजन ले रहा है? देखा न, और जब अपने लिए भरपेट उसने ऑक्सिजन ले लिया, तब प्रदर्शक-यंत्र की घंटी टनटना उठी। देखिए, सूर्य की तीखी किरणें लगते ही वह घंटी फिर बज उठी और जिस पौधे पर छाया है, उसकी प्रदर्शक-घंटी काफी मध्यांतर के बाद बज रही है। और देखिए, पुजारी आपको एक साधारण प्रयोग दिखला रहा है, जो आपकी समझ में आ जाए।

एक पौधा जिस पानी में है, उसमें उसने एक उत्तेजक रासायनिक द्रव की एक बूँद डाल दी। उसका प्रदर्शक-यंत्र जोरों से घंटी बजाने लगा। जैसे एक कुशल टाइपिस्ट अपनी मशीन पर काम कर रहा हो। इसी पौधे के पास एक बड़ा-सा पेड़ है। सुनिए, वैज्ञानिक और इस विज्ञान-मंदिर का पुजारी क्या कह रहा है—

"यह पेड़ बहुत दूर से लाकर यहाँ लगाया गया है। देखिए, आप लोगों को मैं बतला देना चाहता हूँ कि किसी भी पूर्वविकसित पौधे को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाने में पौधे को बड़ी तकलीफ होती है। कभी-कभी तो इस यंत्रणा को बर्दाश्त न कर सकने के कारण बेचारा पौधा मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में पौधे की ठीक वही हालत होती है, जैसी उस आदमी की, जिसे बिना बेहोश किए, उसके हाथ अथवा पैर का ऑपरेशन कर दिया जाय। आपको जान कर आश्चर्य होगा कि इस पेड़ को दूसरी जगह से उखाड़ने के पहले मैंने इसे क्लोरोफॉर्म दे दिया था। अचेतन अवस्था में ही मैंने इसे उखाड़ा। फल यह हुआ कि इसने बिना किसी तकलीफ के इस नई जगह में अपनी जड़ जमा ली।"

विज्ञान की कहानी, वैज्ञानिक की जबानी!

लेकिन यह महान वैज्ञानिक है कौन?

विज्ञानाचार्य सर जगदीशचंद्र बसु।

और, यह यंत्र देखिए। यह तो और विचित्र है। यह पौधों के हृदय की धड़कनों का आलेखन किया करता है। कैफीन या कपूर पौधों के हृदय पर ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया करते हैं, जैसी मनुष्य के हृदय पर। उत्तेजक पदार्थ के देने पर पौधों के हृदय की धड़कनें बहुत तीव्र हो जाती हैं।

एक प्रयोग बसु महोदय आपको फिर दिखला रहे हैं। एक पौधे की जड़ में दिये जानेवाले पानी में उन्होंने अत्यधिक क्लोरोफॉर्म मिला दिया। जब वह पानी पौधे की जड़ में डाला गया, तब धड़कनों का आलेखन करने वाले यंत्र की सूई बिलकुल शांत पड़ गई। उसके पत्ते-पत्ते पर बेहोशी की खामोशी छा गई। दूसरा प्रयोग देखिए। एक फूल की जड़ में विष-मिश्रित

जल डाला गया। कुछ ही मिनटों के बाद फूल के कोमल पौधे ने तड़प-तड़प कर अपना दम तोड़ डाला। ओह, कितना करुण दृश्य है यह !

आइए, अब हमलोग जरा आज से ५०-५६ वर्ष पहले के युग को याद करें। सर जगदीश चंद्र बसु को लंडन में अपना वैज्ञानिक कार्य चलाने के लिए आमंत्रित किया गया। क्या एक भारतीय वैज्ञानिक को पाश्चात्य वैज्ञानिक मान्यता देंगे ? लेकिन, भारत का मस्तक ऊँचा करनेवाला वैज्ञानिक जहाज पर सवार होकर लंदन पहुँचा। उसने डेवी-फैरेडे प्रयोगशाला में अपने आविष्कारों का प्रदर्शन दिखाया। पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक दंग रह गए। वहाँ के अखबारों ने प्रथम पृष्ठ पर, मोटे-मोटे अक्षरों में, बसु के चमत्कार की खबरें छापीं।

पुनः परीक्षा की कठिन बेला !

सन् १६२६ ई० में श्री बसु को ऑक्सफोर्ड बुलाया गया। ब्रिटिश-एसोशिएसन के सामने आचार्य बसु को भाषण करना पड़ा। उन्होंने भाषण के साथ अपना प्रयोग भी दिखलाया। वैज्ञानिकों की आँखों के सामने चकाचौंध छा गया। विष के प्रभाव से एक पौधा मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था। उसकी नब्ज डूब रही थी। हृदय की धड़कनें बंद हो रही थीं। प्रो० आइंसटीन भी उस प्रयोगकाल में उपस्थित थे। कहने वाले ने ठीक ही कहा है—'हीरे की कद्र जौहरी के सिवा कोई और नहीं कर सकता।' महान आइंसटीन ने अपने सामने एक महान वैज्ञानिक को देख कर हृदय का उद्गार प्रकट किया। बसु की सफलता देख कर उनकी आँखों में आनंद के आँसू उमड़ आए। उन्होंने कहा, "मैं हृदय से सिफारिश करता हूँ कि 'लीग ऑफ नेशन' में श्री बसु की मूर्ति तुरत स्थापित होनी चाहिए।"

हमें यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस आविष्कार में, प्रयोग करने के लिए बसु महोदय ने कोई भी यंत्र बाहर से नहीं मँगवाया था। सारी चीजें उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में तैयार कराई थीं। सोचिए, कि उस यंत्र को तैयार करने में श्री बसु को कितना दिमाग खर्च करना पड़ा होगा, जिसके द्वारा यह मान लिया गया कि बेतार के तार की तरंग का भी पौधों पर असर पड़ता है। श्री बसु ने केवल अपनी प्रतिभा के बल पर विज्ञान के शास्त्रीय आविष्कार ही नहीं प्रस्तुत किए, बल्कि उनके द्वारा आविष्कृत पौधों से, तरह-तरह की महत्त्वपूर्ण औषधियाँ भी तैयार हुई हैं।

श्री बसु ने अपने आविष्कारों से पैसे कमाने का कोई काम न किया। कलाकार की तरह निःस्वार्थ साधना—हृदय से कलाकार, मस्तिष्क से महान वैज्ञानिक। मृत्यु पर किसी ने विजय नहीं पाई, और इस दृष्टिकोण से महान बसु हमारे बीच नहीं हैं। मगर अपने आविष्कारों में उनकी आत्मा अमर है, उनकी कृतियाँ अमर हैं। युग उन्हें भूल जाय, तो समझें, उनके साथ बेवफ़ाई की गई।

उपाधियों का सम्राट्

आज जब बड़े उत्साह से निष्ठापूर्वक एक असाधारण व्यक्ति के जीवन की रेखाएँ उभारने बैठा हूँ, तो लगता है कि कान में चारों ओर से शोर

सुनायी पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाठकों का एक समूह स्वर बाँध कर चिल्ला रहा है—"क्यों झूठ बोल रहे हो, हम भी पाठक हैं। हमें धोखा मत दो। मज़ाक ही करना है, तो अपने किसी दोस्त से करो। इन विचित्र बातों से हम प्रभावित होनेवाले नहीं। भला, एक आदमी को कभी इतनी उपाधियाँ मिल सकती हैं?"

जवाब कैसे दूँ? पाठक का निर्णय लेखक को हमेशा मान्य होना चाहिए। लेकिन, विवशता है

अपनी। बात तो विचित्र अवश्य है, मगर है सत्य। साधारण और असाधारण में यही तो अंतर है। प्रतिभा वही तो है, जो चकाचौंध पैदा कर दे। और, सचमुच सात विश्वविद्यालयों से डी० एस-सी०, पी-एच० डी०, एल० एल० डो० और ब्रिटिश सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि पानेवाले इस व्यक्ति ने संसार के वैज्ञानिकों की आँखों के सामने चकाचौंध पैदा कर दिया।

आइए, विभिन्न वर्षों के कैलेण्डर उलटिए—

सन् १६२४ ई० !

रायल सोसाइटी के फेलो।

सन् १६२८ ई०।

इटली की विज्ञान-परिषद् का मेट्यूसी पदक।

सन् १६२६ ई० !

इंडियन मैथेमेटिकल सोसाइटी के सम्मानित फेलो। ब्रिटिश सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि।

सन् १६३० ई० !

जूरिच की फिजीकल सोसाइटी के सम्मानित फेलो। रायल सोसाइटी, लंदन का ह्यूजेज पदक। भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार। ग्लासगो विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०। फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय के सम्मानित पी-एच० डी०। पेरिस विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी०।

सन् १६३१ ई० !

बंबई विश्वविद्यालय के सम्मानित एल० एल० डी०।

सन् १६३२ ई० !

काशी विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी० । मद्रास विश्व-विद्यालय के सम्मानित डो० एस-सी० ।

सन् १६३४ ई० !

ढाका विश्वविद्यालय के सम्मानित डी० एस-सी० ।

सन् १६४१ ई० !

फिलाडेल्फिया की फ्रेंकलिन इंस्टिच्यूट का फ्रेंकलिन पदक ।

यहाँ आपने एक बात पर ध्यान दिया ? शायद नहीं दिया हो । जब सन् १६२४ ई० और सन् १६२८ ई० में विदेश के लोगों ने उसे सम्मानित किया, तब स्वदेश के लोगों ने उसे इंडियन मैथेमेटिकल सोसाइटी का सम्मानित फेलो स्वीकार किया । सदियों से भारत की यही परंपरा रही है । इस देश का यही दुर्भाग्य रहा है कि इसने अपनी धरती में पाए जानेवाले सोने को पाने की कोशिश न की । अगर यह इस दुर्भाग्य का शिकार न होता, तो महाकवि रवींद्र की प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करनेवाला माइकेल मधुसूदन-जैसा प्रतिभा-पुत्र, इधर-उधर क्यों मारा फिरता ? प्रतिभा को जन्म देने में भारत-भूमि अभिनंदनीया है, प्रतिभा को परखने में भारतवासी उपेक्षनीय हैं । किंतु, प्रतिभा का यह नायक तो अपने साथ विलक्षणता का मशाल लेकर आया था, जलता हुआ—प्रकाश से उद्दीप्त—प्रकाशपुंज, ज्योतिपुंज !

एक रोज की घटना है । एक व्यक्ति डलहौसी स्क्वायर से ट्रामगाड़ी द्वारा सियालदह जा रहा था । रास्ते में उसकी नजर एक साईन-बोर्ड पर पड़ी ।

Indian Association
For the cultivation of science.

वह व्यक्ति ट्राम से उतर पड़ा। साईन-बोर्ड के पास आकर वह खड़ा हो गया। आँखों को विश्वास नहीं हो रहा था कि साईन-बोर्ड पर जो बातें लिखी हैं, वे सत्य हैं। फिर दिल ने कहा, "अंदर चल कर पूछ लो। शंका की पुष्टि तो हो जाय।"

अंदर मकान में, एक विशेष बैठक चल रही है। सर आशुतोष मुखर्जी के साथ कलकत्ते के अनेक गरायमान विद्वान बैठे हैं। सामने का परदा खिसकता है और आवाज आती है— "क्या मैं अंदर आ सकता हूँ?"

"जरूर आइए।" उत्तर मिला और कुर्सी पर बैठते-बैठते पूछा गया, "क्या आप अपना शुभ नाम बतलाने का कष्ट करेंगे?"

उत्तर मिला, "जी, मेरा नाम चंद्रशेखर वेंक्ट रमरा है।"

बैठक में उपस्थित सज्जन एक दूसरे का मुँह देखने लगे। तारों की जमात में यह चाँद कैसे उतर आया? विद्वानों ने अपने को धन्य समझा। आनंद के मारे कई सेकेंड नीरवता छायी रही। श्री रमन ने स्वयं मौन-भंग किया। आपने कहा, "पश्चिम के देशों में प्रायः वैज्ञानिकों की अपनी संस्थाएँ होती हैं और वे पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा विज्ञान के प्रचार और वैज्ञानिक संगठन का काम किया करती हैं। यहाँ आकर मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं है। मेरे योग्य कोई सेवा हो, तो मैं सेवा लिए हमेशा तैयार हूँ।"

फिर तो वह विज्ञान का जादूगर उस संस्था का सदस्य बन गया और अपने अमूल्य ज्ञान तथा सहयोग के द्वारा उसकी ऐसी सेवाएँ कीं, कि वह

संस्था संसार के गिने-चुने वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगी।

किसी ने ठीक ही तो कहा है—

बिजली की इब्तदाँ है,
बिजली की इन्तहाँ।

मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज के बी० ए० लेक्चर-थियेटर की घटना है। छात्र शांत होकर बैठे थे। एक प्रोफेसर भौतिक-विज्ञान पढ़ा रहा था। उसकी नजर एक ऐसे छात्र पर गई, जिसे देख कर यह विश्वास नहीं किया जा सकता था कि वह थर्ड इयर का छात्र है; क्योंकि उसकी अवस्था इस लायक बिलकुल नहीं थी। प्रोफेसर ने उसे संबोधित कर पूछा, "क्या तुम इसी क्लास में पढ़ते हो?"

लड़के ने उत्तर दिया, "जी, महाशय!"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम्हारी अवस्था क्या है?" प्रोफेसर ने पूछा।

लड़के ने उत्तर दिया, "जी, मेरी अवस्था चौदह वर्ष की है। मैंने वाल्टियर कॉलेज से एफ० ए० की परीक्षा पास की।"

यह लड़का कोई और नहीं, आप थे भविष्य के महान वैज्ञानिक सर चंद्रशेखर वेंकट रमण। बी० ए० की परीक्षा में भौतिक विज्ञान और अंग्रेजी, दोनों में आप सर्वप्रथम आए। एम० ए० का परीक्षा-फल निकला, तो आप सर्वप्रथम रहे और इस अवस्था तक अपने अनुसंधान-कार्य के लिए काफी मशहूर हो गए। निकट के वैज्ञानिकों ने आपको जाना, पहचाना और प्रोत्साहन तथा सम्मान दिया।

अभी बीस वर्ष की अवस्था भी पूरी नहीं हो पायी थी कि सरकारी नौकरी की प्रतियोगिता-परीक्षा में बैठना पड़ा। वह युग ही ऐसा था कि तीव्र बुद्धि वाले लड़कों के अभिभावक हमेशा इस बात की कल्पना किया करते थे कि वह सरकारी नौकरी करेगा। अंततः श्री रमण को भी वही करना पड़ा। सरकारी नौकरी के कारण देश-भ्रमण करते रहे। किंतु, यह महान व्यक्ति इस काम के लिए कहाँ पैदा हुआ था? उसे तो संसार में और कुछ करना था। दिल के विरुद्ध काम करना उसे पसंद नहीं था। सरकार आपके कामों से खुश होकर, आपको तरक्की देना चाहती थी और बदले में आपने त्याग-पत्र दाखिल कर दिया। इसके बाद आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी में विज्ञान के अध्यापक हो गए।

मद्रास के सामुद्रिक चुंगी-विभाग के कमिश्नर का नाम था—श्री कृष्ण स्वामी अय्यर। उनके घर एक नौजवान बराबर आया-जाया करता। अय्यर साहब की पत्नी ने उस नौजवान को अपना दामाद चुन लिया—मगर मन-ही-मन। लेकिन, वह नौजवान ऊँचे दर्जे का ब्राह्मण नहीं था। इसलिए अय्यर साहब अपनी पत्नी के चुनाव से असंतुष्ट रहे और इसी चुनाव को लेकर पति-पत्नी में बराबर चख-चख हो जाया करती थी। इसी ऊँच-नीच के भेद ने तो हिंदुस्तान को प्रगति से लाखों कोस पीछे धकेल दिया है। लेकिन, समय ने पलटा खाया। नौजवान को सरकारी नौकरी मिल गई और अब अय्यर साहब भी उस नौजवान को अपना दामाद बनाने को तैयार हो गए। नौजवान कुछ ही दिनों के बाद अय्यर साहब का दामाद हो गया। आपने पहचाना, यह नौजवान कौन था?

यह नौजवान था—सर चंद्रशेखर वेंकट रमण।

कॉलेज में नोकरी करते हुए और अत्यंत विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए भी, श्री रमण अपने अनुसंधान-कार्य में लगे रहे। अपने अनुसंधान के चमत्कार के कारण अब आपको यूरप में भी यथेष्ठ ख्याति मिली। और आज, आज तो संसार की उस वैज्ञानिक अनुसंधान-शाला को अपूर्ण माना जाता है, जहाँ श्री रमण के आविष्कारों का प्रदर्शन नहीं होता।

'रमण-प्रभाव !'

श्री रमण का यह संसार-प्रसिद्ध आविष्कार, जिस पर उन्हें नोवेल पुरस्कार मिला। इस विज्ञान के द्वारा हम किसी भी पदार्थ की भीतरी बनावट को जान सकतें हैं। श्री रमण का यह आविष्कार इतना कठिन और महत्वपूर्ण है कि इसे हम समझा नहीं सकते। साधारण ढंग पर हम समझने की चेष्टा करें, तो शायद कुछ समझ लें।

वैसे देखने में तो सूरज के प्रकाश का रंग श्वेत जान पड़ता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि उसमें सात रंग होते हैं। सूरज की सफेद किरण के रंग जब पानी की बूंदों से होकर निकलते हैं, तब वे टूट जाते हैं और तब हम यह देख पाते हैं कि उस एक रंग में छह रंग और भी हैं। उन रंगों में मोड़ और परिवर्तन पैदा होता है। इस विज्ञान के द्वारा किसी भी पदार्थ की भीतरी बनावट को जानने में वैज्ञानिकों को बड़ी सहायता मिलती है।

हम साधारण व्यक्ति, श्री रमण को भले ही भूल जायँ, लेकिन जिन लोगों ने इनके आविष्कार की उपयोगिता समझी है, वे उन्हें नहीं भूल

सकते। उनके इस महान कार्य से चिकित्सा-जगत को भी असाधारण लाभ पहुँचा है।

संसार-प्रसिद्ध यह विज्ञानाचार्य, बंगलोर में रह कर, नित्य विज्ञान की सेवा कर रहा है। आपने वहीं अपनी एक प्रयोग-शाला स्थापित की है और विज्ञान की खोज में, लड़खड़ाते कदमों से चलने वाले, वैज्ञानिकों को अपने असाधारण ज्ञान के प्रसाद दे रहे हैं।

रमण महान हैं! भारत महान है!! भारत-भूमि महान है!!!

मौत को चैलेंज देता है !

यह उन दिनों की घटना है, जब इंगलैंड की राजगद्दी पर महारानी विक्टोरिया थीं और प्रत्येक भद्र महिला अपने को विशेष सम्मान की प्राकृतिक अधिकारिणी मानती थी।

एक डॉक्टर, जिसके घुँघराले बाल पीछे की ओर सँवारे हुए थे, एक रोगी का उपचार कर रहा था। बाहर दरवाजे पर दरवान खड़ा था। इसी समय एक ऐसी महिला आई, जो राजघराने से संबंध रखती थी। दरवान ने उसे देखते ही कहा, "अभी डाक्टर किसी से नहीं मिल सकते।"

"क्यों, तुम सिर्फ मेरा नाम उनसे बतला दो। वे चले आयेंगे।" महिला बोली।

"मुझे मना किया गया है कि मैं उनसे किसी को न मिलने दूँ; क्योंकि अभी वे एक आवश्यक ऑपरेशन करने जा रहे हैं।" दरवान बोला।

लेकिन, महिला ने कहा, ‘ तुम विश्वास रखो। यह बंधन मेरे लिए नहीं हो सकता। तुम जा कर उनसे मेरा नाम भर बतला दो। कहना, वे मिलना चाहती हैं।”

विवश होकर दरवान को अंदर डॉक्टर के पास आना पड़ा। और, डॉक्टर ने निर्भीक होकर अपना उत्तर भिजवाया, “मैं इस समय उनसे तो नहीं ही मिल सकता, अगर इस वक्त क्वीन विक्टोरिया भी आवें, तो मैं ऑपरेशन छोड़ कर बाहर नहीं निकलूँगा।”

महिला को जब यह उत्तर मिला, तब वह निराश होकर वापस चली गई। रोगियों के प्रति वह डॉक्टर इतना श्रद्धालु था, उत्तरदायित्व का ऐसा जीवंत प्रतीक !

सन् १८२६ ई०।

एडिनबरा का तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ चिकित्सालय !

एक ऑपरेशन हो रहा था और मर्मवेधी अस्त्र-प्रयोग को देखकर, एक अट्ठारह वर्ष का नवयुवक मूर्च्छित होते-होते बचा। और, उस रोगी को कितनी असह्य पीड़ा हो रही थी ? उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह अपने जीवन का शेष भाग रोगियों को, इस मृत्यु-यंत्रणा से छुटकारा दिलाने का साधन ढूँढने में बिता देगा। और, इस प्रतिज्ञा के बंधन को निबाहने में उसने लगभग पचीस वर्ष अथक परिश्रम और अनुसंधान किया। उसके इस आविष्कार के लिए मानव-समुदाय ही नहीं, बल्कि संपूर्ण चिकित्सा-जगत उसका कृतज्ञ रहेगा। आप जानते हैं, यह व्यक्ति कौन था ? यह व्यक्ति था—क्लोरोफॉर्म का जन्मदाता, महान सिम्पसन ! पूरा नाम—जेम्स यंग सिम्पसन !

सन् १८४० ई० !

नवंबर की चार तारीख !

यह तिथि चिकित्सा-विज्ञान के इतिहास में सदैव अमर रहेगी। इसी तिथि को महान सिम्पसन ने क्लोरोफॉर्म का आविष्कार किया था। इस महान वैज्ञानिक और डॉक्टर की जन्म-भूमि का नाम है—बाथगेट। स्कॉटलैंड का एडिनबरा नगर, वहाँ से बीस मील दूर, एक छोटे-से गाँव में—बाथगेट। सन् १८११ ई०, सात जून को इस वैज्ञानिक ने संसार का मुँह देखा था। पिता का नाम, डेविड। इसके पहले डेविड सात संतानों के पिता हो चुके थे। खर्च अधिक, आमदनी कहने भर की। डेविड की एक छोटी-सी दूकान थी – पावरोटी की। लोगों ने कहा, "अब तो डेविड को भीख माँगना पड़ेगा। सात संतानें तो पहले से सर के बाल नोच रही थीं, अब आठवीं संतान हुई। बेचारा अब आठवें ग्रह के फेर में पड़ा।"

कुछ बड़ा होने पर सिम्पसन को गाँव के एक छोटे-से स्कूल में भरती कराया गया। अपनी असाधारण मेधा-शक्ति के कारण चौदह साल की अवस्था में ही उसने हाई स्कूल की परीक्षा ससम्मान पास कर ली और उच्च शिक्षा के लिए तुरत एडिनबरा विश्वविद्यालय में दाखिल हो गया। विश्वविद्यालय में आकर उसने चिकित्सा-विज्ञान पढ़ना प्रारंभ किया। किसी रोगी का ऑपरेशन होते देखकर, मूर्च्छित होते-होते बचने वाली घटना इन्हीं दिनों की है। डाक्टरी पढ़ने के लिए उसे बचपन से ही शौक था; क्योंकि गाँव में रह कर वह अनायास ही लोगों के मरने की खबरें सुना करता था।

दो वर्षों के अथक परिश्रम से इन्होंने ससम्मान डाक्टरी की परीक्षा पास कर ली और एडिनबरा में डाक्टरी करने लगे। अपने सद्व्यवहार के

कारण उनका नाम चारों ओर फैलने लगा। कुछ ही दिनों में, उनकी गणना कुशल चिकित्सकों में, होने लगी। दूर-दूर के रोगी इनके पास आने लगे। रोगियों को वे दवा और दिल दोनों देते थे। बड़े प्यार से रोग का इतिहास पूछते और तब दवा लिखते थे। प्रत्येक रोगी को यही महसूस होता कि वह अपने किसी दोस्त से, अपने रोग का हाल बतला रहा है। रोगियों से बातें करते समय, वे कभी भी जल्दी का ध्यान नहीं रखते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि इनके अस्पताल से, स्वास्थ्य-लाभ करके विदा होनेवाले रोगी, जब इनसे विदा लेने आते, तो अक्सर उनकी आँखों से अश्रु धारा बह पड़ती। प्रत्येक रोगी सिम्पसन का अशेष प्रेम लेकर घर को लौटता था और घर जाने पर भी इन्हें कृतज्ञता-भरे पत्र लिखा करता। और, डा० सिम्पसन हमेशा उनके पत्रों के उत्तर दिया करते। अपने बहुव्यस्त जीवन में, उन्होने रोगियों के स्नेह की कभी उपेक्षा न की।

इन्हीं दिनों की बात है। एडिनबरा के मेडिकल-कॉलेज के प्रोफेसर, जो प्रोफेसर और विख्यात चिकित्सक भी थे, डा० हैमिल्टन ने, कॉलेज की नौकरी से पद-त्याग कर दिया। सिम्पसन के शुभचिंतकों और दोस्तों ने सलाह दी कि वे इस पद के लिए अपनी ओर से प्रार्थना-पत्र भेज दें। सिम्पसन ने मित्रों की सलाह मान ली और शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र भेज दिया। कॉलेज के अधिकारी इनकी योग्यता और प्रतिभा के कायल थे। उन्होंने एक मत से यह स्वीकार कर लिया कि इस पद पर सिम्पसन को रखा जाय। लेकिन, इस पद पर आने के लिए एक बंधन था। वह बंधन यह था कि अविवाहित व्यक्ति इस पद पर काम नहीं कर सकता। अब तो सिम्पसन लाचार हो गए।

सिम्पसन की एक महिला मित्र थी। नाम था—कुमारी जेसी। डा० सिम्पसन ने नाटकीय ढंग से इस समस्या का समाधान निकालना चाहा। इन्होंने कुमारी जेसी के नाम एक पत्र लिखा और अपने नौकर से उसके पास भेज दिया। वह पत्र जब कुमारी जेसी को मिला, तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। पत्र भी अजीब था। डा० सिम्पसन ने लिखा था—

माई डीयर जेसी !

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं यहाँ विख्यात चिकित्सक, डा० हेमिल्टन के रिक्त पद पर नियुक्त किया जा रहा हूँ। लेकिन, आपको यह जान कर दुःख भी होगा कि अविवाहित होने के कारण मैं उक्त पद पर नहीं रखा जा सकता। इस पद के लिए यह नियम और अनुबंध है।

अतएव, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप मेरी जीवन-संगिनी होकर मुझे आगे बढ़ाने में हाथ बटाइए। हाँ, मैं यह भी कहूँगा कि इस प्रार्थना-पत्र पर केवल आप अपना हस्ताक्षर ही न करें, बल्कि आगामी रविवार को आप अपना हाथ भी मुझे समर्पित कीजिए। आशा है, गिरजाघर में चल कर आप अपना हाथ मुझे अवश्य समर्पित करेंगी।

—डा० सिम्पसन

जेसी का पूरा नाम था—कुमारी जेसी ग्रिंडल। कुमारी जेसी को पहले तो हँसी आई, मगर पीछे उसने सिम्पसन के प्रार्थना-पत्र को स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही अगले रविवार को गिरजाघर में दोनों का विवाह-कार्य, धूमधाम से संपन्न हो गया। डा० सिम्पसन ने हेमिल्टन के रिक्त स्थान की पूर्त्ति कर दी।

नारी वह शक्ति है, जो पुरुष को आगे भी बढ़ाती है और पीछे भी खींच देती है। अगर नारी की सच्ची सहानुभूति मिली, तो पुरुष जमीन के जर्रे से आसमान का तारा बन जाता है। और अगर नारी ने धोखा दिया, तो पुरुष इंसान से शैतान बन जाता है। मिसेज जेसी के प्रेम ने सिम्पसन को और आगे बढ़ाया। वे अपनी चिकित्सा-कला और अस्त्रोपचार के लिए शीघ्र ही यूरप भर में प्रसिद्ध हो गए। जब वे किसी रोगी का ऑपरेशन करते, तब उसकी यंत्रणा देख कर, उनका हृदय पिघल उठता था और वे कई रोज तक अस्वस्थ रहते थे। लेकिन, कुछ हिम्मत फिर होती और वे पुनः अपने काम में लग जाते थे। मिसेज जेसी सिम्पसन हमेशा उनकी कार्य-कुशलता की प्रशंसा किया करती थीं।

इन्हीं दिनों अमरीका में ईथर का आविष्कार हुआ। डा० सिम्पसन भी ईथर का प्रयोग करने लगे। किंतु, ईथर के प्रयोग से रोगी के अस्त्रोपचार में न तो कोई गारंटी मिली और न रोगी की मर्मवेधी यंत्रणा में किसी प्रकार की कमी ही हो पाई। सिम्पसन तो जो चाहते थे, वह नहीं हो पाया। वे चाहते थे कि कुछ इस प्रकार की दवा का आविष्कार हो, जिसे ऑपरेशन के पहले रोगी पर प्रयोग किया जाय और जिसका फल यह हो कि रोगी उतने क्षणों के लिए अचेत हो जाय, जितनी देर में ऑपरेशन का काम पूरा न हो जाय।

सोलहवीं शताब्दी के अंत तक, लगभग १५६८ ई० तक तो अस्त्रोपचार-विज्ञान की हालत और भी दयनीय थी। मान लीजिए, किसी व्यक्ति का घुटने से नीचे तक का पैर खराब हो चुका है और उतने अंश को काट देना ही उचित है। तो यह समाचार जान कर रोगी की हालत दयनीय हो जाती थी। इस काम के होने के पहले से ही वह निरंतर रोता रहता था। वह

सोचने लगता था कि अब उसे यमपुरी का रास्ता पकड़ना ही होगा; क्योंकि वह पैर काटते वक्त की यंत्रणा भला कैसे बर्दाश्त कर सकेगा ? डाक्टरों का दिल भी आधा हो जाता था ।

वैसे रोगी को एक बड़ी-सी बेंच पर बिठा दिया जाता और उसके दोनों हाथ बाँध दिये जाते । फिर उसका पैर नीचे एक छोटी-सी टेबुल पर रख कर लटका दिया जाता । पैर के नीचे एक छोटी-सी बाल्टी खून गिरने के लिए रख दी जाती । इसके बाद तीन-चार आदमी मरीज को कस कर पकड़ लेते, ताकि वह पीड़ा के कारण शरीर को हिलाने-डुलाने न लगे । और, तब डॉक्टर एक दाँतदार औजार से पैर को काटते थे और रोगी की चीख-चिल्लाहट से उपस्थित लोगों का कलेजा दहल-दहल उठता था । सोचिए, वह दृश्य कितना हृदयद्रावक होता होगा !

डा० सिम्पसन इस कार्य के लिए एक उचित प्रतिषेधक दवा का आविष्कार करने में लग गए । दिन भर तो वे अस्पताल और कॉलेज के कार्य में व्यस्त रहते, फिर रात भर अपने अनुसंधान के कार्य में जागते रहते थे। इस कार्य में उन्होंने चैन को हराम समझा । कभी-कभी तो ऐसा होता कि वे कई दिनों तक अपना खाना-पीना भूल जाते थे । सहायक थे—डा० कीथ और डा० डंकन । जब कभी अपने शोध-कार्य में उन्हें आशा की किरणें दीख पड़तीं, तब उनके चेहरे पर एक दिव्य प्रकाश की आभा फैल जाती और वे मुस्कुरा पड़ते थे ।

एक रोज शाम के वक्त······

मिसेज जेसी, सिम्पसन की उस प्रयोगशाला में आईं, जहाँ वे अपने सहायक डा० कीथ और डा० डंकन के साथ शोध-कार्य कर रहे थे। आकर उन्होंने देखा कि तीनों अचेतावस्था में पड़े हैं। उनकी आँखों में आँसू भर

आए। मिसेज जेसी ने समझा, तीनों वैज्ञानिकों ने शोध-कार्य के पीछे अपने-अपने प्राण गँवा दिए। मगर वे एक हिम्मतवर महिला थीं, उस पर भी एक प्रसिद्ध चिकित्सक की सहधर्मिणी। उन्होंने नाड़ी देखी, तो पता चला कि तीनों जीवित हैं।

बात यह हुई कि अभी थोड़ी देर पहले सिम्पसन ने एक शीशी को पटकने की कोशिश की थी; क्योंकि बड़ी मिहनत से दवा तैयार करने के बाद जब उन्होंने उसे सूँघा, तब उन्हें बेहोशी नहीं आई। उन्होंने तभी देखा कि उनके दोनों डॉक्टर दोस्त दवा की शीशी सूँघ कर बेहोश हो रहे हैं। और, देखते-देखते डा० सिम्पसन स्वयं भी बेहोश हो गए। तीनों जब बेहोश थे, तभी मिसेज जेसी आई थीं।

थोड़ा परिश्रम के बाद सबसे पहले डॉक्टर सिम्पसन ने अपनी आँखें खोलीं। उन्हें होश आया। मिसेज जेसी ने भरे हृदय से पूछा, "अब कैसी तबियत है डार्लिंग ?"

उत्तर में डा० सिम्पसन ने जेसी का हाथ बड़े प्यार से दबाते हुए कहा, "मैं अपने आविष्कार-कार्य में सफल हुआ जेसी ! अब मैं इस दवा के जरिए लाखों-लाख रोगियों को, ऑपरेशन करते समय, मर्मवेधी पीड़ा से मुक्ति दिला सकूँगा।"

पहले तो वहाँ के पादरियों ने यह कह कर इसका विरोध किया कि ईश्वर-विधान के विरुद्ध कार्य करने से ईश्वर क्रुद्ध होगा। लेकिन, जब एक ऑपरेशन में महारानी विक्टोरिया ने क्लोरोफॉर्म सूंघना स्वीकार किया, तब सर्वसाधारण ने उसे हृदय से मान्यता दे दी।

अनपेड एक्स्ट्रा : भारतीय नटराज

''चार्ली चैपलीन की किसी बच्चे ने कभी बड़ी मदद की थी। उस बच्चे ने उसकी किसी फिल्म में बड़ा ही सफल अभिनय किया था। खुश होकर चार्ली चैपलीन ने उस बच्चे को अपनी सोने की मूल्यवान घड़ी दे दी। समय बीतता गया। चार्ली चैपलीन की शोहरत बढ़ती गई। अब तो वह इतना बड़ा आदमी हो गया था कि साधारण लोग उससे मुलाकात भी नहीं कर सकते थे। लेकिन,

जब उसके मिलनेवालों की संख्या में कमी के बदले वृद्धि ही होती गई, तब उसके व्यक्तिगत सचिव ने मिलने-जुलने वालों पर प्रतिबंध लगा दिया।

और, इधर वह बच्चा भी जवान हो गया। वह एक दिन चार्ली चैपलीन से मिलने आया। लेकिन, उसके सेक्रेटरी ने उसे मिलने नहीं दिया। लड़के को थोड़ी तकलीफ हुई। उसने एक पुर्जा और वह सोने की घड़ी सेक्रेटरी को देते हुए कहा, "इसे आप उन्हें दे दीजिए।"

उस लड़के ने पुर्जे पर लिखा था—"Your watch is still working, but not I." (आपकी घड़ी अब भी काम कर रही है। लेकिन मैं बिना काम का हूँ।

यह सच्ची कथा सुनायी थी, भारतीय नटराज ने। एक सज्जन अपने दस वर्षीय पुत्र को लेकर उसके पास यह कहने आए थे कि वह उसे फिल्म में काम दिलवा दें; क्योंकि बच्चा नाटकों में भाग लेता रहा है और इसमें उसकी बड़ी दिलचस्पी है। और, यह कथा सुना कर नटराज ने उस बच्चे के अभिभावक से कहा, "बचपन सीखने और अध्ययन करने की अवस्था है। इस समय आप इसे फिल्म में भेजेंगे, तो इसके अभिनय से दर्शकों को आनंद तो मिलेगा, पर इस बालक की निजी प्रतिभा नहीं बढ़ेगी। बचपन तो सदा रहता नहीं। जब बचपन समाप्त हो जायगा, तब फिर फिल्म में इसके लिए कोई स्थान नहीं रह जायगा; क्योंकि वास्तव में फ़िल्म में काम करने की क्षमता तो इसमें है नहीं। बचपन में इससे बालक का काम लिया जा सकता है, लेकिन इसकी दुनिया जहाँ की तहाँ रह जायगी।"

इतना कह कर उस महान अभिनेता ने बच्चे की पीठ को बड़े प्यार से थपथपाकर कहा, "अब तो पढ़ोगे न ?"

"हाँ।" बच्चे के मुख से निकला।

आपने पहचाना, यह व्यक्ति कौन है? आप हैं, भारतीय नटराज पृथ्वीराज कपूर! किसी चित्रकार के बारे में किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

'खुद मुसव्विर बोलता है,
बैठ कर तस्वीर में।'

पृथ्वीराज भारत के वैसे कलाकार हैं, जिन पर भारत को क्या, सारे विश्व को नाज़ हो सकता है। भारत की ओर से फिल्मी कलाकारों का प्रतिनिधि-मंडल लेकर आपको विदेशों में जाने का मौका लगा है और विदेशों के बड़े-बड़े अभिनेताओं ने कहा है—'पृथ्वीराज पर भारत को ही नहीं, सारे संसार को गर्व होना चाहिए।'

पृथ्वीराज जब पार्ट करते हैं, तब यह कहना मुश्किल हो जाता है कि पार्ट करते वक्त उन्हें यह भी ध्यान है कि वे पृथ्वीराज हैं। उनकी कला का अस्तित्व इतना सुदृढ़ और सामंजस्यपूर्ण है कि निर्दिष्ट व्यक्ति का पार्ट करते समय हाव-भाव, अंग-संचालन, स्वर आदि में 'पृथ्वीराज' नामक व्यक्ति की छाया भी नजर नहीं आती। और, यही तो एक महान कलाकार की सफलता है, जो कला को प्रसिद्धि और सम्मान का मार्ग न समझ कर, आराधना और उपासना की वेदी समझता है। इन पंक्तियों के लेखक को उस महा-मानव के साथ बैठने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। लंबा-तगड़ा, गोरा, सुंदर—हजारों में एक। बातों में माधुर्य, व्यवहार में विनम्रता, उन्नत ललाट पर दिव्यता का प्रकाश और नेत्रों में शोभन संदेश—मौन! सागर के भीतर जितनी ही डुबकी लगाइए, उतने ही अधिक मोती मिलेंगे। पृथ्वीराज के जितने ही समीप जाइए, उन्हें उतना ही विनम्र पायँगे।

उनकी अभिनय-कला का तो मैं तब और कायल हो गया, जब काशी के एक मंच पर वे अपना नाटक खेल रहे थे। नाटक का नाम था—'दीवार'। यहाँ मैं नाटक के कथानक को देना नहीं चाहता। बस, एक दृश्य के बाद उन्हें अपनी पोशाक बदलनी पड़ी थी। इसके पहले उनका पार्ट यह था कि वे एक देशी राज्य के राजा हैं। धोती, खालता कुरता, पगड़ी, कलंगी पहने हुए थे वे। कहानी के अनुसार राज्य की देख-रेख करने के लिए राजा अपने यहाँ एक अंग्रेज मैनेजर को रखता है। उसके साथ बराबर रहने के कारण, राजा पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हो जाता है और वही दूसरे दृश्य में पृथ्वीराज सूटेड-बूटेड होकर मंच पर आते हैं—अंग्रेजी बोलते हुए। मंच के पास ही, प्रथम श्रेणी में बैठे रहने पर भी, मुझे बगल में बैठे एक व्यक्ति से पूछना पड़ा, "यह कौन है ? बड़ा अच्छा आर्टिस्ट है।"

उत्तर मिला, "अजीब हैं आप। अजी, ये पृथ्वीराज हैं।"

मुझे अपनी अनभिज्ञता के कारण शर्मिन्दा होना पड़ा। फिर मेरे हृदय ने कहा, "कलाकार, तुम धन्य हो ! तुम झूठ बोलते हो, तुम्हारी जीवन-संगिनी तुम्हारी पत्नी है। नहीं, तुम्हारी जीवन-संगिनी तुम्हारी कला है, तुम्हारी साधना है। तुमने कला को गले लगाया है, दुनियादारी को नहीं। तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, तुम्हारा परिवार भी है, मगर तुम उन सबों के नहीं हो। यों तो सीता की विदाई पर राजा जनक भी रो पड़े थे—साधारण गृहस्थों की भाँति। मगर, इसे कौन अस्वीकार करेगा कि राजा जनक ब्रह्मज्ञानी थे ?"

और, जब नाटक समाप्त हुआ, तब पृथ्वीराज मंच पर आए। सामने माइक्रोफोन। पोशाक बदल गया—चुस्त पायजामा, खादी का कुरता, गर्दन में कंधे तक फैला हुआ चौड़ा मफलर। पृथ्वीराज ने दर्शकों से बोलते हुए

अंत में कहा, "आप मुझे आशीर्वाद दीजिए कि स्टेज के द्वारा मैं अभिनय-कला की सेवा कर सकूँ।"—फिर इसके बाद बोले, "अच्छा चलिए, फाटक पर मैं आप सबों से चंदा माँगता हूँ।"

हॉल से बाहर आकर देखिए; फाटक पर अभिनय-कला का भगीरथ झोली फैलाये खड़ा है। श्रद्धा से लोग झोली में कुछ रकम डाल रहे हैं। और, पास ही खड़े हैं—खैराती अस्पताल के प्रतिनिधि, विधवाश्रम के प्रतिनिधि, अनाथ बच्चों को मुफ्त शिक्षा देनेवाले लोग। झोली में आयी हुई रकम पृथ्वीराज के पास नहीं रहती। एक रोज भी नहीं। दान के पैसे तत्क्षण दान में चले जाते हैं।

अब इस कलाकार का संक्षिप्त जीवन-परिचय उसी के शब्दों में पढ़िए :— "मेरे दादा तहसीलदार थे। हमलोग पेशावर के रहनेवाले हैं। समुद्री रियासत में हमारी तीन सौ बीघे जमीन थी। वह पंजाब में थी, जो अब पाकिस्तान में चली गई है। पिताजी पुलिस इंसपेक्टर थे। हमारे दादा हमलोगों से बचपन में पूरी मिहनत करवाते और दूध पिलाते थे। हमलोग अपने खेतों में प्याज पटाने के काम में लगाये जाते। काँटेदार झाड़ काटते। हमारी जमीन बड़ी उपजाऊ थी। गेहूँ और कपास खूब पैदा होता था। वह जमीन सरकार से मिली थी। दादाजी ने ही वह जंगल साफ करा कर एक रियासत बनवायी थी। खेत पर इस मिहनत के लिए हमें चार आने रोज मजदूरी भी मिलती। हमारे घर में सोलह हंडिया थीं। इन हंडियों को, हमलोगों को ही शाम को जलाना होता। हमारे दादा हमें दौड़ाते थे। फुटबॉल से वह चिढ़ते थे। हाँ, कबड्डी और दंगल में हमें प्रोत्साहन देते। सभी मजहब के लोग दादाजी की प्रतिष्ठा करते थे। वह उन

मजहबी जलसों की सदारत करते। उनको बाइबिल, ग्रंथसाहब, गीता—इन धर्म-ग्रंथों की अच्छी जानकारी थी।

"सबसे पहले मैंने 'सत्यवादी हरिश्चंद्र' में धनपति या गणपति का पार्ट किया। अभिनय था—शैव्या को सूचित करना कि रोहिताश्व को सर्प ने डँस लिया है। उस समय मैं समुद्री में, मिड्ल स्कूल के बच्चा वर्ग में पढ़ता था। समुद्री लगभग सत्रह सौ परिवारों का एक कस्बा था। वहाँ एक राम-लीला क्लब था। समय-समय पर वहीं नाटक हुआ करता। यह सन् १६२० ई० से पहले की बात है। मुझे रंगमंच पर उतारने में पहला हाथ श्री लाल नारायण दास का था। वह मेरे शिक्षक थे। वह समय भी दूसरा था। उस समय रामलीला में हिंदू और मुसलमान दोनों अभिनय करते थे। मुझे अपने दोस्त और सहपाठी हबीब की याद अब भी तंग करती है। हमलोग साथ-साथ पढ़ते थे। साथ-साथ खेलते थे। बाद में भी, जब मैं ऊँची पढ़ाई के लिए बाहर चला गया, तो फिर हमलोग छुट्टियों में मिलते। तब बातें इस तरह शुरू होतीं, मानों वे कभी खत्म होनेवाली न हों। लेकिन, जब अखाड़े में हमलोग एक दूसरे का सामना करने के लिए उतर जाते, तब क्या मजाल कि किसी के दिल में तनिक भी नर्मियत की भावना आवे?

रामलीला क्लब मेरे लिए पहला मंच था, जहाँ मुझे अभिनय करने का मौका मिला। एक समय की बात है। बुजुर्ग लोग आपस में लड़ गए और रामलीला क्लब की हालत डाँवाडोल हो गई। उस समय हम बच्चे मैदान में आए। मैंने पेशकदमी ली। हमलोगों ने खुद रामलीला तैयार की। मेरा दोस्त हबीब लक्ष्मण बना था। इस कारण बुजुर्ग लोगों ने आपस में मेल कर लिया। और कहाँ तक कहूँ? लॉ में फेल कर गया, तो सन् १६२६ ई०

में फिल्म-जगत में पहुँचा। पहले मैंने अनपेड एक्स्ट्रा की हैसियत से काम करना शुरू किया था। फिल्म में मेरा जीवन इम्पीरियल फिल्म कंपनी के अंदर शुरू हुआ। अपने प्रारंभिक फिल्म-जीवन की बड़े मजेदार घटना याद आती रहती है। एक बार किसी फिल्म की शूटिंग हो रही थी। मैं कई एक्स्ट्रा कलाकारों के साथ खड़ा था। डायरेक्टर भी वहीं था। न जाने, मेरे मन में क्या आया। मैं घोड़े की तरह बन कर स्टुडियो के मैदान में सरपट दौड़ने लगा। मेरी यह हालत देख कर डायरेक्टर की परेशानी बढ़ी। उन्होंने मुझे रोक कर पूछा, "अजी, यह क्या कर रहे हो?"

मैंने कहा, "साहब आपको दिखला रहा हूँ कि आपके सामने मुझ-जैसा महान कलाकार मौजूद है। मगर, आप हैं जो मेरी खूबियों को पहचान ही नहीं रहे हैं।"

डायरेक्टर ने मुस्कुरा कर कहा, "अच्छा, आज तो तुम हमारी फिल्म के 'हीरो' हुए।"

एक बार कुछ नाटक-लेखक अपनी नाटक की प्रकाशित पुस्तकें लेकर पृथ्वीराज के पास गए। वे अपनी पुस्तक पर पृथ्वीराज की राय जानना चाहते थे। पृथ्वीराज ने पुस्तकों को उलट-पलट कर कहा, "अभी मेरे लिए यह तो संभव नहीं है कि मैं इन पुस्तकों पर विस्तार से अपनी राय जाहिर कर सकूँ। परंतु, इतना कह सकता हूँ कि किसी भी एक ऐसी नाटक की पुस्तक को ले लीजिए, जिसमें दस दृश्य उपस्थित किए गए हों। ऐसा नाटक पढ़ने में अच्छा हो सकता है। साहित्य और विषय-वस्तु दोनों दृष्टि-कोण से। लेकिन, वैसा नाटक रंगमंच पर कमजोर पड़ेगा; क्योंकि इसमें दस बार पर्दे उठाने-गिराने की आवश्कता होगी। इसमें दर्शकों के दिमाग पर कथा-वस्तु का क्रम बार-बार टूटा करेगा और नाटक बेअसर हो जायगा।

आधुनिक नाटकों में जितने कम बार पर्दे बदल कर कथा समाप्त की जा सके, उसे उतना ही सफल माना जाना चाहिए। ऐसे नाटक दर्शकों के दिमाग पर गहरे उतरते हैं और स्थायी असर डालते हैं।"

अपने पृथ्वी-थिएटर्स के लिए पृथ्वीराज जितने नाटक खेलते हैं, उन्हें स्वतंत्र रूप में किसी लेखक ने नहीं लिखा है। मंच-निर्देशन के साथ-साथ यहाँ तक कि संवाद-लेखन में भी लेखक को पृथ्वीराज से सहायता लेनी पड़ी है। पृथ्वीराज जानते हैं कि कैसी परिस्थिति में किस प्रकार के शब्द अभिनेता के गले में रोड़े का काम करते हैं। आपको यह जान कर और भी आश्चर्य होगा कि भारतीय नटराज पृथ्वीराज एक उच्चकोटि के संवाद-लेखक भी हैं। आप एक सफल डायरेक्टर भी हैं। मगर, आपने अबतक किसी फिल्म का निर्देशन नहीं किया है। निर्देशन किया है, तो बस अपने थिएटर के नाटकों का। आपके स्वनिर्मित एवं स्वनिर्देशित नाटक हैं—'आहुति, 'पैसा, 'दीवार, 'पठान, 'कलाकार' आदि।

एक पत्रकार ने पृथ्वीराज से पूछा, "कुछ लोगों की राय है कि फिल्म-उद्योग ने भारतीय रंगमंच को नष्टप्राय कर दिया। इस संबंध में आपकी क्या राय है?"

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए पृथ्वीराज ने कहा, "ऊपरी तौर पर यह बात सच है। परंतु, अगर हम गहराई में जायँ, तो देखेंगे कि वास्तव में हमारे रंगमंच में नष्ट होने के बीज पहले से मौजूद थे। जैसे मुगल सल्तनत को बरबाद करके अँग्रेजों ने भारत को गुलाम बनाया—सही है। लेकिन, क्या यह भी सही नहीं है कि खुद मुगल सल्तनत आपसी प्रतिद्वंद्विता, नाकाबलियत से सड़ चुकी थी और अँग्रेजों के हमलों के सामने वह उसी

प्रकार धराशायी हो गई, जिस प्रकार कीट खाये पेड़ तूफ़ान में गिर जाते हैं। सभी पेड़ तो तूफ़ान में नहीं गिरते! हमारा रंगमंच धीरे-धीरे जोवन से दूर होता गया। उसकी स्वाभाविकता नष्ट होती गई। फिल्म ने जीवन को अधिक स्वाभाविक ढंग से पेश किया और लोग फिल्म की ओर झुके। लोग रंगमंच से उदासीन होने लगे। मैं बताऊँ, एक जगह हमने एक नाटक देखा, जिसकी कथा-वस्तु महाभारत पर आधारित थी। देखा—युद्धिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—पाँचो पांडव मंच पर नृत्य कर रहे हैं, गीत गा रहे हैं। क्या यह स्वाभाविक है? एक नाटक में बदमाश के चरित्र का अभिनय करनेवाला एक पात्र सधे राग में, पूरे आलाप के साथ गाना गाने लगा। दर्शकों को संगीत पसंद आया। उन्होंने तालियाँ भी दीं। परंतु, परिणाम क्या हुआ? उस बदमाश के प्रति लोगों के हृदय में घृणा के भाव प्रज्ज्वलित होने चाहिए थे। और, तभी नाटक अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता था। लेकिन, दर्शक तो बदमाश की सराहना करने लगे थे। नाटक के उद्देश्य की हत्या तो उसी स्थल पर हो गई। या फिर कई जगह नाटकों में देखता हूँ कि अपढ़, गँवार नौकर संस्कृत-मिश्रित भाषा में अपने स्वामी को संबोधित कर रहा है। क्या यह अनुभवजन्य सचाई है?

पूर्णतः स्वाभाविक नाटक में विभिन्न चरित्रों का अभिनय करनेवाले पात्रों को स्वतः बिना सिखलाये बोलना चाहिए। परंतु, नाटक तो 'नाटक' है। नाटक कोई लिखेंगे। अगर नाटक-लेखक समाज में विद्यमान विविध चरित्रों को नजदीक से समझने में असमर्थ रहे और अगर नजदीक से समझ कर भी वे उन चरित्रों के भावों को पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर सकते, तो उनका नाटक कम-से-कम मंच पर अवश्य असफल हो जायगा। भाषा के सौंदर्य

और शैली की सुन्दरता से वे भले ही पाठकों का मनोरंजन कर लें, परंतु रंगमंच पर उतरते ही भावों की दीनता स्पष्ट हो जाती है।

और, अब स्वयं सिनेमा-जगत का क्या हाल है? शुरू में आधुनिक विज्ञान के जोर से, टेकनीक के बल पर, सिनेमा ने परिस्थिति, वातावरण, भावों की अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता लाया। परंतु, भारतीय फिल्में पश्चिम की फिल्मों से न सिर्फ टेकनीक को ही ले आईं, बल्कि कथा-वस्तु भी उधार लाने लगीं। फिल्मों में पाश्चात्य और भारतीय विषयों का ऐसा घोटाला हुआ कि उनमें बेहद कृत्रिमता आ गई। मसलन, भारतीय पात्रों को पाश्चात्य पोशाकों में धड़ल्ले से पेश किया जाने लगा। उनके रहन-सहन में इतना अधिक पश्चिमीपन डाला गया कि वे भारतीय आत्मा को छू सकने में असमर्थ होने लगे। और, फिर पुरानी भारतीय नाटक कंपनी से, बिना प्रसंग, गाने और नृत्य उधार लिये गए। फिल्मों को खूब चमकदार बनाने के लिए काफी से अधिक रुपए खर्च किए जाने लगे।"

श्री पृथ्वीराज के पास एक सज्जन इसलिए आए कि वे एक फिल्म बनाना चाहते थे। फिल्म चल निकलने पर इस काम को और भी चलाने का मंसूबा था। पृथ्वीराज से वे सलाह चाहते थे। श्री पृथ्वीराज ने उनसे पूछा, "आप फिल्म में कितने रुपए खर्च कर सकते हैं?"

उक्त सज्जन ने उत्तर दिया, "पचास हजार रुपए।"

पृथ्वीराज बोले, "तो आप उन रुपयों को बैंक में जमा कर दीजिए। एक-एक फिल्म बनाने में आजकल लाखों रुपए लग जाते हैं। आपके रुपए डायरेक्टरों के पास पहुँच कर गायब हो जायँगे। अभी और रुपए जमा हो जायँ, तब कुछ सोचिएगा।"

भारतीय नटराज पृथ्वीराज ने अबतक लगभग दो दर्जन से अधिक फिल्मों में काम किया है। यों लोकप्रियता आपको 'सिकंदर' नामक फिल्म से प्राप्त हुई। जिस सिकंदर को इतिहासकारों और कहानीकारों की लेखनी अमरता नहीं दिला सकी, उसका अभिनय करके पृथ्वीराज ने उसे कलात्मक अमरता दी। इसके अलावा पृथ्वीराज ने जिन प्रसिद्ध फिल्मों में काम किया है, उनके नाम हैं :—

'विद्यापति, इशारा, दहेज, आवारा, मुगल- ए- आजम आदि।'

देश से विदेशों में पृथ्वीराज को अधिक सम्मान मिला है। यह तो भारत की परंपरा रही है। फिल्म-जगत में रहते हुए भी पृथ्वराज स्टेज के धुरंधर अभिनेता हैं। स्टेज से प्रेम होने के कारण ही तो आपने पृथ्वी-थिएटर्स कायम किया है। इसके संबंध में उन्हीं के मुख से सुनिए।

" पृथ्वी-थिएटर्स को शुरू किए बारह वर्ष से अधिक हो गए। अभी मैं करीब तीन लाख रुपए के घाटे में हूँ। पहले मैं रोज-रोज अंडे खाता था। अब एक रोज नागा कर देता हूँ। इन बारह वर्षों में मैंने केवल चार महीने की छुट्टी ली है। जब कि पृथ्वी थिएटर्स में काम करने वाले ६० कलाकारों और कर्मचारियों को हर वर्ष सवेतन ३५ रोज की छुट्टी मिलती है। परंतु, अगर मैं छुट्टी लूँ, तो हर महीने के लिए २५ हजार रुपए जुर्माना होंगे। पृथ्वी-थिएटर्स का प्रति वर्ष का खर्च तीन लाख रुपया है। अगर आठ महीने में आदमी बारह महीने का खर्च निकाल सके, तो चार महीना बैठ कर चैन से कुछ सोचें, कुछ नई चीज तैयार करें। परंतु, मुझे कभी चार महीने बंबई में बैठने का सुअवसर ही न मिला। इसके बावजूद बारह वर्ष के अपने जीवन-काल में पृथ्वी-थिएटर्स तीन लाख के घाटे पर है। यों इस घाटे को मैं बहुत बड़ा घाटा नहीं समझता; क्योंकि जिस थिएटर्स ने ४८ लाख रुपए खर्च किए

हैं, उसके लिए तीन लाख का घाटा कुछ नहीं है। कभी-कभी मुझे खुद आश्चर्य होता है कि सिनेमा के मुकाबले में इस थिएटर्स को बारह वर्ष में सिर्फ तीन लाख रुपए का ही घाटा किस प्रकार हुआ ? यह बेकारी का जमाना है। है न ? तो मि० गौड (श्रीमान् परमेश्वर) भी बेकारी के शिकार थे। मैंने उन्हें भी काम दे दिया है। उन्हें अपना जेनरल मैनेजर रख लिया है। वही सब इंतजाम करते होंगे।

पृथ्वी-थिएटर्स के जरिए दुनिया के महान पुरुषों और सर्वसाधारण से जो प्यार मुझे मिला, जो सम्मान मुझे मिला, उसे रुपए में नहीं आँका जा सकता।"

जनता और थिएटर के प्रति ये उद्गार हैं— महान पृथ्वीराज के। पृथ्वीराज एक योग्य पिता हैं और इस कारण उन्हें योग्य पुत्रों का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। राजकपूर तो प्रथम श्रेणी के कलाकार और निर्देशकों में गिने जाने लगे हैं।

कला के प्रति पृथ्वीराज का सबसे बड़ा आदर्श यह रहा है कि पैसे के लोभ में पड़ कर उन्होंने कभी ऐसी फिल्म में काम न किया, जिसमें उन्हें गंदे संवाद बोलने या गंदा अभिनय करना पड़े। किसी भी फिल्म में काम करने के लिए, एग्रीमेण्ट पर हस्ताक्षर बनाने के पहले, वे पूरी कथा सुन लेते हैं, और निर्माता से तय कर लेते हैं कि वे कहीं भी अश्लीलता को अपने पार्ट में स्वीकार न करेंगे। फिर पृथ्वीराज से अश्लीलाता को स्वीकार करने के लिए कहने का साहस ही कौन कर सकता है ?

भारतीय नटराज को शत्-शत् नमस्कार !

एक मजदूर : महान राष्ट्रपति

उसने अपनी माता के बारे में लिखा, "मैं जो कुछ हूँ और जो कुछ होने की आशा करता हूँ, उन सब का सारा श्रेय मेरी देवी-तुल्य माता को है।"

और जरा गौर से देखिए—एक किशोर मजदूर जंगल काट रहा है। किस तरह वह हथियार चला रहा है। सारा शरीर पसीने से लथपथ है, मगर, भला उसके हाथ रुकनेवाले हैं? लेकिन, इतने ही काम से उसका पेट नहीं भरनेवाला है। वह मक्का बोने और काटने में भी अपने पिता की सहायता कर रहा है। तभी एक किसान आता है। उससे अपना थोड़ा काम करने के लिए कहता है। आश्वासन भी देता है, "तुझे अच्छी मजूरी दूँगा।"

किशोर चल पड़ा, गुलामी करने। गुलामी से उसे असंतोष नहीं है; क्योंकि वह काम करके पैसे लेना गुलामी नहीं समझता। वह इसे सामाजिक व्यापार समझता है। वह मिहनत के बदले पैसे खरीदता है। पैसों से वह अनाज

और कपड़े खरीदेगा। कुछ पैसे बच गये, तो उनसे किताबें भी खरीदेगा और पढ़ेगा—मन लगाकर।

हाँ, गुलामी करने में वह घड़ी के काँटे नहीं देखेगा, वक्त नहीं काटेगा। मिहनत और ईमानदारी के दो पैसे, बेईमानी के हजार पैसों से अधिक पवित्र हैं। वह पैसे देनेवाले के ऊपर अहसान कर देगा, स्वयं अहसान नहीं लेगा। गर्दन बोझ से भले ही टूट जाए, मगर वह भला क्यों 'उफ्' करेगा? पैसे देनेवाले गर्दन तोड़ कर काम लें, उसे कोई एतराज नहीं, कोई शिकवा-शिकायत नहीं।

लकड़ी की एक कुटिया में जन्म लेकर, राष्ट्रपति-भवन (ह्वाइट हाउस) तक प्रगति; एक वर्ष से कम की स्कूली पढ़ाई के बावजूद महान वक्ता और लेखक के रूप में ख्याति; निराशाओं और पराजयों से घिरे रह कर भी, उनसे ऊपर उठ कर, समूचे इतिहास के सबसे अधिक सम्मानित और लोकप्रिय राजनीतिज्ञ के पद पर प्रतिष्ठा।

यह है, अब्राहिम लिंकन के असाधारण जीवन का व्योरा!

उन्होंने १२ फरवरी, सन् १८०९ को केंटकी के वन-प्रदेश में, जो अब लारू काउंटी में पड़ता है, खेती की एक छोटी-सी जमीन (फार्म) पर लकड़ी की अनगढ़ कुटिया में जन्म लिया। इस पवित्र झोपड़ी के आस-पास अमरीकी सरकार ने, हाल में पत्थर का एक विशाल स्मृति-भवन खड़ा करा दिया है, ताकि एक महान अमरीकी नागरिक का जन्म-स्थल सुरक्षित रह सके।

लिंकन के पिता टॉमस लिंकन में, विशेष उत्साह या महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। वे पढ़े-लिखे भी नहीं थे और अपने परिवार के लिए वह बहुत ही

साधारण जीविका भर का प्रबंध कर सके थे। लिंकन की माता नैंसी हैंक्स लिंकन मृदु और धार्मिक प्रवृत्ति की थीं और प्रारंभिक आगंतुकों के कठोर जीवन की मुसीबतें झेलने के लिए बहुत दुर्बल थीं।

सन् १८१६ ई० में कई जगह रहने के बाद, लिंकन-परिवार इंडियाना जा बसा। इसके लिए उन्हें परिश्रम करते हुए लगभग सौ मील जंगल पार करना पड़ा। यहाँ पहले जाड़ों में तो उन्हें तीन ही ओर से घिरे एक शेड में रहना पड़ा, जिसे बंद करने के लिए भैंसे की खाल काम में लायी जाती थी। एक वर्ष बाद उनकी लकड़ी की कुटिया तैयार हुई। पर, भीतर का फर्श कच्चा ही था। इसके अगले वर्ष श्रीमती लिंकन की मृत्यु हो गई। वर्षों बाद, बड़े होकर लिंकन ने जीवन-संघर्ष के अध्याय खोले।

अपनी शिक्षा की कठिनाइयों के बारे में वे स्वयं लिखते हैं—"मैं किस्तों में नौ वर्ष तक स्कूल जाता रहा। पर, कुल मिलाकर मेरी पढ़ाई एक वर्ष से अधिक नहीं हुई। मैंने स्वयं लिखना और पढ़ना सीखा। मेरे पास कागज-पेंसिल नहीं थी। लिखने या गणित का अभ्यास करने के लिए, मैं एक लकड़ी के बेलचे पर कोयले के टुकड़े से काम चलाता था। कुछ समय बाद, जब मुझे कागज प्राप्त हुआ, तब मैं अपने लेख लिखने के लिए बन-कुक्कुट के पंख की लेखनी और जंगली जड़ी-बूटी के रस से स्याही बनाता था।"

दिन भर मजदूरी करके भी लिंकन पढ़ना चाहते थे। बदन थकावट से चूर-चूर हो जाता। मगर, फिर भी जो पुस्तकें उन्हें मिल जातीं, वे उन्हें पढ़ डालते। पुस्तकें उधार लेने के लिए, उन्हें कई बार मीलों पैदल चलना पड़ता था।

एक बार महान लिंकन ने अपने एक मित्र को बतलाया था —"पचास मील के घेरे में जिस किसी भी पुस्तक का नाम मैंने सुना था, उसे मैंने पढ़ डाला था।"

लिंकन की बुद्धि और हाजिरजवाबी असाधारण थी। उनमें कहानी कहने की भी अद्‍भुत् क्षमता थी। और, इन्हीं गुणों के कारण देहाती समाजों में दँवरी-चौपाल के समय, उनकी बुलाहट होती थी। वे अपनी बातों या चुटकुलों से देहाती लोगों का मनोरंजन करते थे। कानून का पेशा अपनाने की प्रेरणा, उन्हें भाषण की प्रतिभा और न्याय-प्रेम के कारण ही मिली। किंतु, उनके पास न तो कानून की अपनी पुस्तकें थीं, न उन्हें खरीदने के लिए पैसे ही। अतः, इंडियाना के कानूनों के संबंध में एक पुस्तक देखने के लिए, वे अक्सर बारह मील दूर, एक परिचित के दफ्तर में जाया करते थे।

मात्र उन्नीस वर्ष की आयु में, लिंकन का कद छह फीट, चार इंच का हो गया था। उनकी भुजा और टांगें असाधारण लंबी थीं और हाथ-पैर बहुत बड़े-बड़े। ऐसा कहा जाता है कि उनमें तीन आदमियों के बराबर बल था। वे एक साथ दो शहतीर उठा कर ले जा सकते थे और अपने इलाके के किसी भी पुरुष या युवक से अधिक तेज दौड़ सकते थे। साथ ही, किसी को भी कुश्ती में पछाड़ सकते थे।

सन् १८२८ ई० में, मात्र उन्नीस वर्ष की आयु में, वे एक पड़ोसी की माल लादने की नाव लेकर मिसीसीपी नदी से अठारह सौ मील की यात्रा करके, न्यू और्लियंस पहुँचे। नाव में वे सब्जियाँ और सूअर लाद कर, न्यू और्लियंस के कपास की खेती करनेवाले जमींदारों में बेचने के लिए ले गए थे।

दो वर्ष के बाद लिंकन-परिवार, बैलगाड़ियों में सब सामान लाद कर इलिनौय चला गया। वहाँ एक लकड़ी का नया घर तैयार किया गया। अब्राहिम ने दस एकड़ भूमि घेरने को, बाड़ बनाने के लिए लकड़ी चीरी। इसलिए वर्षों बाद, जब वे संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति-पद के लिए उमीदवार खड़े हुए, तब उपेक्षा से उन्हें चिराई-मजूर कहा जाता था। उसी जाड़े में उन्होंने चौदह सौ लकड़ी चीर कर, एक पड़ोसी स्त्री को उससे सिलाई गई, एक पतलून की सिलाई चुकायी थी।

अगले वसंत में, लिंकन, माल ढोने वाली नाव लेकर, दुबारा न्यू औलियंस गए। यहाँ उन्होंने पहली बार नीग्रो दासों को, साँकलों से बाँध कर रखे हुए और नीलाम किये जाते देखा। इस हृदयद्रावक दृश्य से उन्हें बड़ी ग्लानि हुई और उन्होंने तभी ठान लिया कि "जब भी अवसर होगा, मैं दास-प्रथा के विरुद्ध लड़ूँगा।"

उस समय उन्हें स्वप्न में भी गुमान न था कि इतिहास में उनका नाम, इस उत्पीड़ित जाति को मुक्ति दिलानेवाले के रूप में, अमर हो जायगा।

कुछ दिनों के बाद, वहाँ से लौट कर, लिंकन इलिनौय के न्यू सलेम नगर में बस गए। यहाँ वे कई वर्ष रहे और छोटे-मोटे धंधे करते रहे। अनंतर उन्होंने डेंटन ओफुर की दूकान में नौकरी कर ली। यहाँ उन्हें कपड़े के एक थान पर, सिर रखे मेज पर लेट कर, कर्कहम का व्याकरण पढ़ने का और देहाती दूकान में जमा होनेवाले लोगों के सामने अपनी कहानियाँ एवं चुटकुले सुनाने का समय मिल जाता था। यहीं उन्हें 'ईमानदार एब' की उपाधि मिल गई, जो जीवन-भर उनके साथ रही। कहा जाता है कि एक

बार वे रेजगारी देने में, छह सेंट की भूल सुधारने के लिए, दो मील पैदल गए थे। किंतु, साल भर बाद दूकान बैठ गई और बाइस वर्ष के लिंकन बेकार हो गए।

'ब्लैक हॉक' युद्ध के समय, न्यू सलेम के स्वयं-सेवक रक्षा दल ने लिंकन को अपना कप्तान चुना। पर, उनके संग्राम-क्षेत्र तक पहुँचने के पहले ही युद्ध की समाप्ति हो गई।

राजनीति में प्रवेश करने के आकांक्षी लिंकन ने सन् १८३२ ई० के बसंत में घोषित किया कि वे शरद् में राज्य की विधान-सभा के चुनाव में उम्मीदवार होंगे। यद्यपि उन्हें अपने पड़ोस के प्रायः सभी वोट मिले, फिर भी वह चुने नहीं गए।

इसी समय एक मिस्टर बेरी के साझे में, उन्होंने न्यू सलेम में तीन छोटी दूकानें खरीद कर, एक बड़ी दूकान आरंभ की। माल सब उधार खरीदा गया। सन् १८३३ ई० के शुरू में ही, यह दूकान भी, १२०० डालर का ऋण चढ़ जाने पर बंद हो गई। कुछ ही दिन बाद बेरी की मृत्यु हो गई। सारे ऋण का बोझ लिंकन ने अपने ऊपर ले लिया। वे चाहते, तो दूकान का दीवाला घोषित कर, ऋण से मुक्त हो सकते थे। पर, उन्होंने पूरा ऋण चुकाया—यद्यपि ऐसा करने में उन्हें १५ वर्ष कठिन परिश्रम और किफायत करनी पड़ी। हर महान् व्यक्ति सत्यता के वातावरण से निकली हवा में साँस लेना पसंद करता है।

कुछ समय बाद, जब लिंकन को जिले (काउण्टी) के तत्कालीन सर्वेयर जॉन कैल्हून के सहायक का पद मिल गया, तब उन्हें थोड़ा आराम मिला। इसी समय वे स्थानीय पोस्टमास्टर भी नियुक्त हो गए। वहाँ डाक बहुत

आती-जाती थी। अतः, वे डाक को 'अपनी टोपी के अंदर रख कर' दरवाजे-दरवाजे जाते और पत्र बाँटते थे। ठीक तो है, सागर में मिलने के लिए नदी को लाखों कोस की दूरी तय करनी होती है।

सन् १८३४ ई० में, जब राज्य-विधान-सभा के लिए दूसरी बार उमीदवार होकर लिंकन एक सभा में भाषण करने के लिए खड़े हुए, तब उन्हें देख कर एक श्रोता ने कहा, "क्या पार्टी को इससे अच्छा व्यक्ति नहीं मिल सकता था?"

किंतु, लिंकन का तर्कपूर्ण भाषण सुनने के बाद, उसने स्वीकार किया कि लिंकन की जानकारी बाकी सभी उमीदवारों की सम्मिलित जानकारी से अधिक थी।

इस बार चुनाव में लिंकन सफल हो गए और इसके बाद तीन बार और सफल हुए। राज्य के तत्कालीन कैंप बैंडालिया जाने के लिए लिंकन ने एक मित्र से उधार लेकर; एक बना-बनाया नया सूट खरीदा। वहीं उनका परिचय स्टीवन-ए-डगलस से हुआ। वे वर्षों तक अनेक क्षेत्रों में उनके प्रतिस्पर्द्धी रहे थे। सन् १८३६ ई० में, मात्र सत्ताइस वर्ष की आयु में, वकालत की परीक्षा पास करके लिंकन नई राजधानी स्प्रिंग फिल्ड चले आए। मँगनी के घोड़े पर सवार होकर, वे एक परिचित व्यक्ति मिस्टर स्पीड की दूकान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने क्रिसमस तक उधार विस्तर और एक कमरा देने की माँग की। उन्हें आशा थी कि तब तक उनकी वकालत चल निकलेगी। उन्होंने कहा, "लेकिन, यदि मुझे सफलता नहीं मिली, तो कह नहीं सकता कि उधार भी चुका सकूँगा या नहीं।"

मि० स्पीड ने दूकान के ऊपर, अपने कमरे में, लिंकन को अपने बड़े पलंग पर सोने की अनुमति दे दी। लिंकन ने घोड़े पर से अपने बस्ते उतार

कर, ऊपर के कमरे में पटक दिये और नीचे आकर मुस्कुराते हुए कहा, "लीजिए मि० स्पीड, मैं अब जम गया।"

इलिनौय की विधान-सभा में पहले-पहल, एक राजनीतिज्ञ के रूप में, लिंकन की प्रतिभा और बुद्धि विकसित हुई। वे जनसाधारण के बहुत निकट रहते। उनकी धारणा थी कि सार्वजनिक मामलों में उचित मार्ग का सबसे सही संकेत जनसाधारण की सम्मति से ही मिलता है। राज्य में रेलों, नहरों, और बैंकों की स्थापना के लिए उन्होंने बड़ा परिश्रम किया।

इन आठ वर्षों में लिंकन वकालत भी करते रहे। घोड़े पर सवार होकर, एक कचहरी से दूसरी में, जिला-जज के साथ-साथ दौरा करते हुए, वे सारे प्रदेश में प्रसिद्ध और सम्मानित हो गए। सन् १८४३ ई० में, उन्होंने विलियम हर्नडन के साथ, वकालत का साझा कर लिया। लिंकन सिद्धांततः केवल वैसे ही पक्ष की पैरवी करते थे, जिसकी संपूर्ण सचाई और औचित्य में उनका पूरा विश्वास हो। एक बार उन्होंने एक मुकदमे में, गवाहियों के चलते-चलते पैरवी करना छोड़ दिया; क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि जिस पक्ष की ओर से वे खड़े हैं, वह न्याय का पक्ष नहीं है। कचहरी में वे प्रायः ऐसे चुटकुले सुनाया करते थे, जिनसे न केवल वातावरण हलका रहता था, बल्कि उनका पक्ष भी स्पष्ट हो जाता था। इस प्रकार वे शीघ्र ही इलिनौय के श्रेष्ठ वकीलों में गिने जाने लगे।

युवावस्था में लिंकन का एन रुटलेज से प्रेम था। उनकी मृत्यु हो जाने पर लिंकन को इतना दुःख हुआ कि उनके मित्रों को चिंता हो गई कि लिंकन कहीं पागल न हो जाएँ। वर्षों बाद, सन् १८४२ ई० में, कैंटकी से आई हुई सुंदरी युवती मेरी टॉड के पाणि-ग्रहण के लिए लिंकन और डगलस

में प्रतिस्पर्द्धी हुई। विजय लिंकन की हुई और ४ नवंबर, १८४२ को उनका विवाह हो गया। उनके चार पुत्र हुए, जिनमें से एक, रॉबर्ट टी० लिंकन बाद में, ब्रिटेन में संयुक्त राज्य अमरीका के राजदूत हुए।

जिस समय लिंकन को दो वर्षों के लिए संयुक्त राज्य अमरीका की प्रतिनिधि-सभा (हाउस ऑफ रिप्रेज़ेंटेटिव्स) का सदस्य बनने का मौका मिला, उस समय दास-प्रथा का प्रश्न राष्ट्र और राज्यों की राजनीति की मुख्य समस्या बना हुआ था।

लिंकन ने घोषित किया,—"अगर दास-प्रथा अनुचित नहीं है, तो कुछ भी अनुचित नहीं है।"

लिंकन ने टैक्सॉस से ओरेगान तक के प्रदेश से दास-प्रथा को दूर रखने की योजना के पक्ष में घोर आंदोलन किया। जैसा कि उन्होंने कहा—"इस योजना के लिए कम-से कम मैंने चालीस बार मत दिया, पर सब व्यर्थ।" उन्होंने यह भी यत्न किया कि कोलंबिया डिस्ट्रिक्ट में दासों को मुक्त कर दिया जाय, पर उसमें भी वे सफल न हो सके।

संसद के लिए वे दुबारा नहीं चुने गए। अतः, उन्होंने फिर वकालत शुरू कर दी। उन्होंने धन की आवश्यकता महसूस की। अपने परिवार का भार-वहन करने के अलावा वह पिता को, अपनी विमाता को और एक सौतेले भाई को खर्चा भेजते थे और पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने पुराने मकान को रेहन से भी छुड़ाया। उनके संघर्ष-कालीन दिनों के बारे में, प्रत्यक्षदर्शियों ने लिखा है—"कंधों पर एक भूरी शाल ओढ़े, कागजों और कपड़ों से भरा हुआ एक थैला, और डोरी से बँधा हुआ एक बिना दस्ते का पुराना छाता लिये, वे घोड़े पर दौरा किया करते थे।"

सन् १८५४ ई० में, कैन्सॉस-नेब्रास्का विधेयक (बिल) पास हो कर कानून बन गया। यह विधेयक सेनेट में डगलस ने पेश किया था और इसके अनुसार कैन्सॉस और नेब्रास्का के नए राज्यों को यह अधिकार दिया गया था कि संघ में सम्मिलित होकर वे स्वयं इसका निर्णय करेंगे कि उनमें दास-प्रथा का चलन हो या नहीं। उत्तरी राज्यों ने अनुभव किया कि इस नए कानून से दास-प्रथा का प्रवेश विस्तीर्ण पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी हो जाएगा।

इसी समय रिपब्लिकन पार्टी का संगठन हुआ, जिसके संस्थापकों में लिंकन भी थे। फिलाडेलफ़िया में सन् १८५६ ई० में, इस दल का जो प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, उसमें उपराष्ट्रपति-पद के लिए लिंकन का नाम लिया गया, पर उन्हें मनोनीत नहीं किया गया।

सेनेट-सदस्य स्टीवन ए० डगलस ने, इलिनौय लौट कर जोरों से अपने कैन्सॉस-नेब्रास्का विधेयक का समर्थन किया। इस पर लिंकन ने तीन घंटे के अपने एक भाषण में, उसका जवाब दिया और इस प्रकार वे मानव-स्वतंत्रता के महान आदर्श के पक्षपोषक के रूप में सामने आए। सन् १८५८ ई० में, इलिनौय के डेमोक्रेट दल ने सेनेट के लिए डगलस को मनोनीत किया और रिपब्लिकन दल ने घोषणा की—"सेनेट के लिए हमारे प्रथम और एकमात्र मनोनीत प्रतिनिधि सम्माननीय अब्राहम लिंकन हैं।"

लिंकन का स्वीकृति-भाषण सुनने के लिए स्प्रिंगफील्ड का राज-भवन दर्शकों से खचाखच भरा था और वे खूब तालियाँ बजा रहे थे। सत्य और न्याय से परिपूर्ण उनके शब्दों की गूँज हम आज भी सुन सकते हैं—"अपने ही भीतर फूट डाल कर कोई घर नहीं बना सकता। मेरा विश्वास है कि

यह शासन चिरकाल तक आधा स्वतंत्र और आधा गुलाम होकर नहीं टिक सकता ।"

महान लिंकन ने डगलस को चुनौती दी कि वे उनके साथ इस विषय पर बहस कर लें। सात बार बहसें हुईं। इलिनौय के जिन-जिन नगरों में, ये बहसें हुईं, वहाँ बहुत दूर-दूर से लोग उन्हें सुनने के लिए आए। डगलस की दलीलें सिलसिलेवार और प्रभावोत्पादक थीं; लिंकन की दो टूक, सीधी, सहज और जनता के मर्म को छू लेनेवाली। अपने विषय में लिंकन ऐसे तन्मय हो जाते कि उनके स्वर में एक अद्भुत गंभीर और सुंदर गूँज आ जाती, उनकी आँखें दीप्त हो उठतीं और उनका लंबा अनगढ़ शरीर एक अनोखी भव्यता पा लेता।

डगलस का कहना था कि लोगों को यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए कि वे दास रखेंगे या नहीं। लिंकन का उत्तर था कि यह निर्णय करने का अधिकार किसी भी मनुष्य को नहीं है कि वह दूसरे मनुष्य को अपनी संपत्ति बनाये। फिर दास-प्रथा गलत है और उसका उन्मूलन होना ही चाहिए।

यद्यपि सेनेट के चुनाव में डगलस ही सफल हुए, फिर भी लिंकन को शीघ्र ही, इससे भी बड़ा सम्मान मिलनेवाला था—संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति चुने जाने का।

डगलस के वाद-विवादों के बाद; एक महान वक्ता के रूप में लिंकन की ख्याति सारे देश में फैल गई और उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका के हर प्रदेश से व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण आने लगे। फरवरी १८६० ई० में, उन्होंने न्यूयार्क के कूपर इंस्टीच्यूट में जो भाषण किया था, उसके बारे में

न्यूयार्क ट्रिब्यून ने लिखा था— "न्यूयार्क की सभा में कभी किसी के पहले भाषण का इतना गहरा प्रभाव नहीं हुआ।" यह भाषण छपने पर बहुत जगह उद्धृत हुआ और लिंकन के राष्ट्रपति का चुनाव निकट आने लगा। उत्तर और दक्षिण में कटुता बढ़ने एवं फैलने लगी। ६ नवंबर १८६० ई० को, लिंकन संयुक्त राज्य अमरीका के सोलहवें राष्ट्रपति चुन लिये गए। अगली फरवरी से पहले ही, सात दक्षिणी राज्यों ने संघ से अलग होकर "अमरीकी सम्मिलित राज्य (कानफेडरेड स्टेट ऑफ अमरीका) की स्थापना कर ली और जेफर्सन डेविड को अपना प्रेसिडेंट चुन लिया।

४ मार्च, सन् १८६१ ई० को अपने सभारंभ-भाषण में लिंकन ने घोषित किया—"इन राज्यों (संयुक्त राज्यों) का संघीकरण सदा के लिए हुआ है। कोई राज्य केवल अपने प्रस्ताव के आधार पर, न्यायतः संघ से अलग नहीं हो सकता।"—अनंतर उन्होंने कहा, "देश ने अपनी नौका का कर्णधार मुझे बनाया है। मैं उसे पार लगा कर रहूँगा।"

ऐसे अनेकों थे, जो सिर हिला कर कहते—"क्या यह बेढंगा वनचारी सचमुच हमारी नाव को पार लगा सकेगा ?"

सदैव दूसरों का ध्यान रखनेवाले, कोमल और मृदु स्वभाव के, लेकिन एक बार निश्चय कर लेने पर चट्टान की तरह अडिग, वर्षों की यातना और पराजय के बावजूद, अपने अनुयायियों को प्रेरणा देने और उनकी निष्ठा बनाये रखने में समर्थ, अब्राहम लिंकन ने अंत में यह प्रमाणित कर दिया कि वे अमरीका के सबसे अधिक लोकप्रिय और समादृत राजनीतिज्ञ हैं। उन्हें जनसाधारण से स्नेह था और बदले में लोग उन पर पूरा भरोसा रखते थे। इनका मंत्रिमंडल अकसर उन्हें सुझाता था कि वे अपने राजकीय

पत्र अधिक परिमार्जित भाषा में लिखा करें, किंतु वे अपनी सरल भाषा में ही लिखते रहे। वे यह कह देते कि "लोग समझ लेंगे।"

कुछ रोज बाद वर्जिनिया, आर्कैंसो, टेनेसी और उत्तरी कैरोलाइना भी दक्षिणी फेडरेशन में सम्मिलित हो गए। १२ अप्रैल, सन् १८६१ ई० को, दक्षिणी कैरोलाइना के फोर्ट समटर पर फहराती हुई संघ की पताका पर गोली चला कर, सम्मिलित (दक्षिणी) राज्यों ने गृह-युद्ध आरंभ कर दिया।

लिंकन ने आरंभ में ही घोषित कर दिया कि उनका युद्ध दास-प्रथा के विरुद्ध नहीं, बल्कि संघ की रक्षा के लिए है। उन्होंने ७५,००० स्वयंसेवी सैनिकों के लिए अपील की और जॉर्ज बी० मैक्लैलन को उत्तरी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। जुलाई में बुलरन की लड़ाई में, जो गृह-युद्ध की पहली वास्तविक लड़ाई थी, दक्षिणी सेना की विजय हुई। उत्तरी सेनाएँ इस आघात से सन्न रह गईं। जनरल मैक्लैलन महीनों तक, एक बहुत अच्छी सेना का संगठन करके, उसे सैनिक प्रशिक्षण द्वारा तैयार करने में लगे रहे। लेकिन, दक्षिण पर उन्होंने कोई चढ़ाई नहीं की। उत्तरी सेनाओं की पहली जीत जनरल यू० एस० ग्रांट ने ही प्राप्त की। सन १८६२ ई० के शीतकाल के आरंभ में, उन्होंने फोर्ट हेनरी और फोर्ट डोनेलसन पर कब्जा कर लिया। अंत में, लिंकन ने मैक्लैलन को हटा कर, ग्रांट को उत्तरी सेनाओं का सेनापति बनाया।

किंतु, उत्तर की हार-पर-हार होती गई। लिंकन के छोटे लड़के विली की, इसी समय मृत्यु हो गई और जनता के दुःख-कष्टों के प्रति उनकी करुणा और बढ़ गई। वे प्रायः छावनियों, अस्पतालों और बंदीगृहों का दौरा करते रहते और सैनिकों तथा उनके अधिकारियों से बातचीत करके, उनकी श्रद्धा

और उनका विश्वास प्राप्त कर लेते। कहा जाता है कि युद्ध के दौरान में, उनकी मेज पर बराबर बाइबिल रखी रहती और वे प्रायः उसे पढ़ते और बहुधा रात-रात भर प्रार्थना करते रहते।

यद्यपि लिंकन ने संघ की रक्षा को युद्ध का पहला उद्देश्य माना था, फिर भी सन् १८६२ ई० तक उन्होंने समझ लिया कि दूसरा महान उद्देश्य दास-प्रथा का अंत होना चाहिए। हजारों दास भाग कर, उत्तर के प्रदेशों में जा रहे थे। जुलाई, १८६२ ई० में, कांग्रेस ने कानून बना कर, भाग कर आए हुए दासों को, उत्तरी सेना में भरती होने का अधिकार दे दिया और उन्हें तथा उनके परिवारों को मुक्त कर दिया। आरंभ में लिंकन ने प्रयत्न किया कि दासों को क्रम से मुक्ति दी जाए और उनके स्वामियों को क्षति-पूर्ति के रूप में सरकार से कुछ दिलाया जाए। लेकिन, इस योजना को दक्षिण ने स्वीकार नहीं किया। फिर अपने शांत और संजीदा ढंग से लिंकन ने, बिना अपने मंत्रिमंडल से परामर्श किये ही, अपनी दास-मुक्ति की घोषणा का प्रभावशाली मसविदा तैयार कर लिया। लेकिन, समय अभी इस घोषणा के प्रसार के अनुकूल नहीं था। सेडार माउराटेन और बुलरन की दूसरी लड़ाई में, उत्तरी सेनाओं की हार हुई थी और अब वे जनरल ली का सामना कर रही थीं, जो पोटोमैक नदी पार करके मेरीलैंड में बढ़ आए थे। लिंकन ने अपने मंत्रिमंडल को सूचना दी कि उन्होंने मन-ही-मन ईश्वर के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की थी कि अगर आसन्न लड़ाई में उनकी सेना की विजय होगी, तो वे मान लेंगे कि ईश्वर ने उनके प्रश्नों का उत्तर दासों के पक्ष में दे दिया है। १७ सितंबर को एराटीटैम की लड़ाई में उत्तरी सेनाओं की विजय हुई। पाँच दिन बाद लिंकन ने दास-मुक्ति की प्रारंभिक घोषणा जारी करके चालीस

लाख दासों को "१ ली जनवरी, १८६३ को और तदनंतर सदा के लिए मुक्त" घोषित कर दिया।

नववर्ष-दिवस पर जब लिंकन ने घोषणा के अंतिम मसविदे पर हस्ताक्षर किये, तब उन्होंने कहा, "इतिहास में मेरा नाम कभी लिया जाएगा, तो मेरे इसी कार्य के लिए। मेरी समूची आत्मा इसमें है।"

किंतु, युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ था। फेडरिक्सबर्ग और चांसलर्सविल में उत्तरी सेनाओं की करारी हार हुई, किंतु गेटिसबर्ग और विक्सबर्ग में उन्हें विजय मिली। लिंकन ने अपने कमरे की दीवार पर संयुक्त राज्य अमरीका का एक बड़ा नकशा लगा रखा था, जिस पर वे नेताओं की गतिविधियों का अनुसरण करते रहते थे। संग्राम की गति का वे दिन-रात अध्ययन करते, सैन्य-संचालन की पुस्तकें पढ़ते, सेनापतियों के साथ चालों की योजनाएँ बनाते और बहुधा उनका निर्देशन भी करते। लेकिन, उनका हृदय बराबर संग्राम-भूमि में जूझनेवाले सैनिकों और उनके चिंताग्रस्त परिवारों की ओर लगा रहता। उनके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ गहरी होती जातीं और उनकी आँखें धँसती जातीं; वे कहा करते, "मुझे लगता है कि मैं फिर कभी हँसूँगा नहीं।"

एक बार, जब संघ-सेना के सेनापति ने बीस भगोड़े सैनिकों को मृत्यु-दंड देने का उनसे अनुरोध किया, तब उन्होंने कहा, "संयुक्त राज्य अमरीका में पहले ही बहुत अधिक शोकग्रस्त विधवाएँ हैं। ईश्वर के लिए मुझे उनकी संख्या बढाने के लिए मत कहो; क्योंकि मैं कदापि वैसा नहीं करूँगा।"

सन् १८६३ ई० की शरद ऋतु में, चैटानूगा की लड़ाई में, उत्तरी सेनाएँ विजयी हुईं। अगले बसंत में, जनरल ग्रांट ने विल्डरनेस, स्पाटमिलवानियाँ

और कोल्ड हार्बर में काफी चर्ति के बाद रिचमंड पर आक्रमण शुरू किया। लिंकन ने उत्तर से और सैनिक माँगे। इस समय तक जनता को लिंकन पर पूरी श्रद्धा हो गई थी और उसने बड़े उत्साह से उनकी माँग का उत्तर दिया, "हम तीन लाख की संख्या में आते हैं, पिता अब्राहम !"

लिंकन फिर राष्ट्रपति चुने गए। जनवरी, १८६५ ई० की संसद में लिंकन के जीवन का स्वप्न वास्तविकता में परिणत हो गया। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में संशोधन करके, देश के किसी भी भाग में दास-प्रथा को निषेध कर दिया गया।

४ मार्च, १८६५ को दूसरे सभारंभ-भाषण में लिंकन ने कहा, "हमारी हार्दिक कामना है—हम सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हैं कि युद्ध का यह अभिशाप जल्दी ही दूर हो जाए····किसी के प्रति द्वेष के बिना, सभी के प्रति उदार भाव रखते हुए, ईश्वर जो हमें सत्य का मार्ग दिखलाता है, उस पर अटल रहते हुए, हम उस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न करें, जिसे हमने उठाया है; देश के घावों की मरहम-पट्टी करें, जिसने युद्ध की चोट सही है उसके लिए, उसकी विधवा के लिए और अन्य सभी राष्ट्रों के साथ न्यायपूर्ण और स्थायी शांति की प्राप्ति के लिए सभी संभव उपाय करें।"

जब तक जनरल शर्मन ने जॉर्जिया को पार नहीं कर लिया, ३ अप्रैल, १८६५ को उत्तरी सेनाओं ने रिचमंड में प्रवेश नहीं कर लिया और ६ अप्रैल को आपोमाटोक्स कोर्ट हाउस में जनरल ली ने जनरल ग्रांट के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं कर दिया, तब तक युद्ध समाप्त नहीं हुआ। जनरल ली के आत्म-समर्पण की खबर ह्वाइट हाउस में पहुँची। तब लिंकन अपने मंत्रिमंडल से मिले और उनके कहने पर, सभी को चुपचाप अश्रुपूर्वक घुटने टेक कर, ईश्वर को धन्यवाद दिया !

देश में खुशी की लहरें दौड़ गईं। नीली और भूरी सेनाओं का युद्ध अंततोगत्वा समाप्त हो गया था, संघ की रक्षा हो गई थी, दास मुक्त हो गए थे। अब्राहम लिंकन का एक महान लोक-बंधु और एक उत्पीड़ित जाति के मुक्तिदाता के रूप में अभिनंदन हुआ। लिंकन रिचमंड गए। यह नगर कुछ समय पहले तक दक्षिणी सम्मिलित राज्य की राजधानी थी। वहाँ एक नदी के घाट पर खुदाई करते हुए, नीग्रो मजदूरों की एक टोली उन्हें मिली। उन्हें देखते ही, उनमें से एक नीग्रो बूढ़ा लपक कर आगे आया और पुकार कर बोला, "भगवान को धन्यवाद है कि एक महान पैगंबर प्रकट हुआ है। अंत में, वे अपनी संतानों को उनके बंधन से मुक्त करने के लिए अवतरित हुए हैं। भगवान की जय हो!"

इतना ही नहीं, घुटने टेक कर उसने लिंकन के पैर चूम लिये। घुटने टेके हुए नीग्रो दल से घिरे हुए लिंकन ने कहा, "मेरे सामने घुटने मत टेको। केवल भगवान के सामने घुटने टेको और उसी को धन्यवाद दो।"

दक्षिण के प्रति लिंकन के मन में कोई वैमनस्य नहीं था। दक्षिणी सैनिकों और सेनापतियों की वीरता की उन्होंने प्रशंसा की। स्टोनवाल जैक्सन को उन्होंने एक बहादुर और ईमानदार सिपाही कहा और एक बार जनरल ली का चित्र देखते हुए उन्होंने कहा, "यह एक वीर और उदात्त मनुष्य का चेहरा है।"

उदार-हृदय, उदार-चेता और दयालु लिंकन ने जनता के हृदय में वह स्थान पा लिया था जैसा कि संसार के इतिहास में इने-गिने व्यक्तियों ने ही पाया है। एक बार उन्होंने कहा था, "ईश्वर को अवश्य साधारण जन से प्रेम है, तभी तो उसने इतनी बड़ी संख्या में उन्हें बनाया है।"

राष्ट्रपति के पद से उनका अंतिम कार्य भी करुणा से ही प्रेरित था और यह था—युद्ध-क्षेत्र से भागने के लिए मृत्यु-दंड पाए हुए एक सैनिक को क्षमा-दान। क्षमा-पत्र पर हस्ताक्षर करते हुए लिंकन ने कहा, "मेरा विचार है कि यह जवान धरती के नीचे की अपेक्षा, ऊपर रह कर अधिक उपयोगी हो सकता है।"

१४ अप्रैल, १८६५ ई० को, जिस दिन उन्होंने इस क्षमा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, उसी शाम को वे सपत्नीक फोर्ड थियेटर में एक नाटक देखने गए थे। उनका आसन राष्ट्रीय पताकाओं से सजा था। लड़ाई के अंत का, विजय का और शांति की आशा का उल्लास चारों ओर था। दस बज कर बीस मिनट पर, जब सभी की आँखें की रंगमंच की ओर लगी हुई थीं, हठात् पिस्तौल की गोली का शब्द सुनाई दिया। लिंकन अपनी कुर्सी में आगे लुढ़क गए, हत्यारा रंगमंच की ओर लपका। उसका पैर एक झंडे में अटक गया और वह गिरा। लेकिन, फिर भी मंच के पिछले द्वार तक पहुँचने में वह सफल हुआ और वहाँ से घोड़े पर सवार होकर भागा।

श्रीमती लिंकन चिल्लायीं—"राष्ट्रपति की हत्या हो गई!"

लिंकन को उठा कर सामने के घर में ले जाया गया, जहाँ वे रात भर निश्चल पड़े रहे। सारा वाशिंगटन चिंतित भाव से उनकी प्राण-रक्षा के लिए प्रार्थना करता रहा। लेकिन, दूसरे दिन प्रातःकाल, बिना फिर से चेतना प्राप्त किये, उनकी मृत्यु हो गई। उनके अभिन्न मित्र स्टैण्टन ने, उनकी शैय्या के पास खड़े हुए लोगों से, धीमे स्वर में कहा—

"अब वे युग-युग की निधि हो गए हैं........।"

मानवता को मृत्यु-दंड

रात्रि के आठ बजे !

सन् १९५३ का १९ जून !!

इसी समय मानवता के नाम पर उस दंपत्ति को प्राण-दंड दिया गया, मानवता को प्राण-दंड दिया गया। इस बीसवीं शताब्दी में, जो पूर्णतः

एक राजनीति का युग है, बहुत-से लोग फाँसी पर चढ़ाए गए। लेकिन, उन दोनों के फाँसी होने पर लोकमानस चीख उठा। अमरीका के राष्ट्रपति आइसन हावर के पास उस दंपत्ति ने 'मर्सी अपील' (क्षमा-दान) की थी, लेकिन राष्ट्रपति आइसन हावर ने उनकी अपील को ठुकरा दिया। प्रतिक्रिया में संसार भर के गण्यमान नेताओं, कवियों, लेखकों और समाजसेवियों ने राष्ट्रपति से अनुरोध किया कि वे अपने निर्णय पर पुनः विचार करें। लेकिन, राष्ट्रपति आइसन हावर अपने पूर्व निर्णय पर अडिग रहे। वे दोनों वास्तव में अपराधी थे या नहीं, यह फैसला देना मेरा काम नहीं। वह भविष्य

बतलाएगा, वातावरण बतलाएगा, परिथितियाँ बतलाएँगी। लेकिन, फाँसी की कोठरी से उन दोनों ने एक दूसरे के पास जो पत्र लिखे थे, वे अंगरेजी साहित्य की स्थायी निधि के रूप में समादृत किये गए हैं। प्रत्येक पत्र में मानवता की पुकार है, मानवता का तक़ाजा है। लगता है कि राजनीति और सुरक्षा की आड़ में, मनुष्य स्वयं मानवता का शिकार कर रहा है। गोकि वे पत्र पति ने पत्नी के पास और पत्नी ने पति के पास भेजे हैं, किंतु उन पत्रों में मानवता की वेदना और विह्वलता उस प्रकार परिलक्षित होती है, जैसे मनुष्य दर्पण में अपना चेहरा देख ले।

संसार-प्रसिद्ध कानून-विशारदों ने इस मुकदमें के सारे काग़जात देखे और न्यायालय के फैसले पर अपनी असहमति प्रकट की।

"मैं इस मुकदमें के सभी आवश्यक रेकार्ड देख गया। मैंने बहुत कुछ सोचा है और अंत में इस निर्णय पर पहुँचना पड़ा है कि वे दोनों बिलकुल निर्दोष हैं........।"

पालविलिया (फ्रांस)

".... अनुमान नहीं, बल्कि अणु-बम के पारखियों का कहना है कि इसका रहस्य सैकड़ों पृष्ठ की छपाई और अच्छे कागज पर ही अंकित किया जा सकता है। इस दंपत्ति के विरुद्ध ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे यह समझा जाए कि अणु-बम का रहस्य इन्हीं लोगों ने खोला है या खोलने की कोशिश की है। अपराध की पुष्टि और प्रमाण के अभाव को मद्देनजर रखते हुए, इस दंपत्ति को. जो दो नादान और अबोध संतान के माता-पिता हैं—मृत्यु-दंड नहीं दिया जाना चाहिए........।"

न्यायमूर्त्ति जेम्स वुल्फ
(सुप्रीम कोर्ट, यूता)

एक प्रश्न !

यह दंपत्ति, ये कौन हैं ?

माइकेल और राबर्ट, अनाथ और अबोध बच्चों के माता-पिता !

रोजेनवर्ग -दंपत्ति !

जूलियस और एथिल !!

सन् १६३६ ई० में इन दोनों की भेंट हुई थी। विवाह के बाद से दोनों गिरफ्तारी तक साथ रहे। दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि जूलियस की पत्नी एथिल को अनेकों बार यह प्रलोभन दिया गया कि वह सरकारी गवाह बन जाय। उसे फाँसी से क्या, जेल से भी मुक्ति दे दी जाएगी। मगर वह सती नारी अपने कर्त्तव्य और प्रेम की परीक्षा में सफल पायी गई। उसे प्राणों का प्रलोभन भी न डिगा सका।

सोवियत रूस को अणु-बम के गोपनीय रहस्य बतलाने के जुर्म में, उन्हें गिरफ्तार किया गया और उन पर मुकदमा चला। सन् १६५० ई० के अगस्त माह में संसार की जनता ने इस दंपत्ति का नाम सुना; क्योंकि इसके पहले वे अमरीका के एक व्यापारी मात्र थे। जूलियस का एक दोस्त था, जो गिरफ्तार किये जाने पर सरकारी गवाह बन गया और उसने न्यायालय के समक्ष यह गवाही दी कि उसी ने अणु-बम के नक्शे तैयार किए थे। कानून की दृष्टि से यह अभियोग कितना कमजोर था, इस बात का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जूलियस का यह मित्र बिलकुल मूर्ख था।

जिस अणु-बम को तैयार करने में बड़े-से-बड़ा वैज्ञानिक का मस्तिष्क खर्च हुआ होगा, उसका नक्शा क्या एक साधारण और मूर्ख व्यक्ति बना सकता है ? लेकिन उस मूर्ख की मूर्खता, स्वार्थपरता और कायरता का; अमरीकी पुलिस ने अनुचित लाभ उठाया और उसने मामले को आवश्यकता से अधिक सससनीखेज बना कर, न्यायालय के समक्ष पेश किया।

सन् १६५१ ई० में रोजेनवर्ग का यह विश्वविख्यात मुकदमा चला। न्यायाधीश का नाम था— इरविंग आर० कॉफमेन। बचाव-पक्ष के वकीलों में प्रमुख था— इमानुएल एच० ब्लांच। अपने पत्रों में रोजेनवर्ग-दंपत्ति ने उसे 'मेनी' के नाम से संबोधित किया है। बचाव-पक्ष की ओर से तो 'मेनी' का पिता भी एक वकील था।

सन् १६५१ ई०। मार्च की उन्तीस तारीख !

हाँ, इसी रोज लगभग आठ घंटे की निरंतर बहस के बाद माननीय न्यायाधीश और सम्मानित जूरियों ने इस दंपत्ति को दोषी ठहराया और मृत्यु-दंड का फैसला सुना दिया। रोजेनवर्ग के वकील ब्लांच ने शीघ्र ही इसकी सुनवाई के लिए हाईकोर्ट में, अपील की। मगर, कुछ टेकनीकल एतराज प्रस्तुत करके यह अपील हाईकोर्ट द्वारा खारिज कर दी गई। हार कर, राष्ट्र-पति आइसन हावर के पास क्षमा-दान के लिए प्रार्थना-पत्र दिया गया। इस निर्दोष दंपत्ति को प्राण-दान मिले, इसके प्रति सहानुभूति और सहमति देने वाले व्यक्ति थे— महान वैज्ञानिक आईस्टीन, फ्रांस के महान साहित्यकार जॉ–पाल सार्त्र। संसार-प्रसिद्ध फ्रेंच कवि लुई अरागाँ, डा० हेराल्ड यूरे। विश्व-प्रसिद्ध कवि लुई अरागाँ ने अपने पत्र में जो कुछ लिखा था, सारे संसार की जन–वाणी ने उसे 'अपनी आवाज' कह कर पुकारा था। समाज ने

स्वीकार किया था कि इस घटना के फलस्वरूप लुई अरागाँ ने जो कुछ लिखा है, लगता है कि वह उनकी आत्मा की वाणी है; क्योंकि भाषा के अभाव में वह अपने भाव प्रकट करने में असमर्थ है और लुई अरागाँ के पत्र में उनके भावों को सच्ची भाषा मिल गई है। लुई अरागाँ के पत्र का केवल घटनात्मक महत्व ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक महत्व भी है। पाठकों की जानकारी के लिए हम उसका संक्षिप्त सार नीचे दे रहे हैं :—

"········ मेरे नाम पर क्या तुम········ यह सूचित कर दोगे कि न्याय की इस भ्रूणहत्या ने मेरे मन में कितनी घृणा और भर्त्सना पैदा कर दी हैं !·····

" उस दंपत्ति का यही अपराध है कि उनलोगों ने अपने दृष्टिकोण को सचाई के साथ पेश किया है ? इस प्रकार के अपराध तो मैं हर रोज देखता हूँ। उस अपराध के लिए, जो साबित नहीं हुआ है, इन निर्दोष मानव-मूर्त्तियों को फाँसी की सजा दे दी जायगी, तब फ्रांस की जनता का विरोध और भी उग्र और तीव्र रूप में व्यक्त होना चाहिए; क्योंकि हम न केवल अमरीका के वर्त्तमान राष्ट्रपति आइसन हावर से, बल्कि लिंकन के देशवासियों से कह देना चाहता हैं कि अगर तुमलोगों ने यह निर्दोष हत्या होने दी, तो तुम्हारे उस झंडे पर, जिस पर तारों का चिन्ह खिंचा है, वह धब्बा लग जायगा, जिसे तुम्हें एक दिन अपने खून-पसीने और आँसुओं से धोना ही पड़ेगा···· । "

विश्वविख्यात साहित्यकार जाँ-पाल सार्त्र का यह मानवता से ओत-प्रोत नोट पढ़िए :— "रोजेनबर्ग-दंपति की प्राण-रक्षा न केवल उन दोनों अस्तित्व की रक्षा है, बल्कि हमारी और मानवता की प्राण-रक्षा है। एक

कारण तो यह है कि उन दोनों ने अपने को निरपराध साबित करने के लिए पर्याप्त प्रमाण दिये हैं और दूसरा कारण यह है कि न्याय की कुर्सी पर बैठे न्यायाधीश महोदय उनके अपराधों को प्रमाणित नहीं कर सके हैं। फिर भी उन्हें प्राण-दंड दिया जा रहा है।......

रोजेनवर्ग-दंपति को बचाने का अर्थ है, हम अपने को बचाते हैं, हम मानवता को बचाते हैं। हम न्याय की आड़ में न्याय की हत्या को रोकते हैं। यदि अपने प्रजातांत्रिक स्वत्वों के सुरक्षात्मक युद्ध में हमारे पाँव नहीं टिके, तो विश्वास रखिए, उसका अर्थ यह होगा कि मोशिये पिन की सरकार और उनके भावी उत्तराधिकारी फिर आगे चल कर, हममें ही अनेक रोजेनवर्ग ढूँढ़ निकालेंगे।....मैं हर तरह से इन सभी लोगों के साथ हूँ, जो रोजेनवर्ग-दंपति के विरुद्ध दी गई दंडाज्ञा पर पुनर्विचार चाहते हैं; क्योंकि उनका हेतु मानवीय स्वातंत्रय एवं शांति का हेतु है।"

—जॉ-पाल सार्त्र

इतना ही नहीं, इनके अतिरिक्त संसार के विभिन्न अंचलों से लगभग तीन हजार पादरियों ने राष्ट्रपति के पास इस आशय के पत्र भेजे कि वे रोजेन-वर्ग-दंपति को 'क्षमा-दान' दे दें, मगर प्रेसिडेंट हावर ने 'नहीं' से 'हाँ' कभी नहीं किया। पोप पॉयस ने भी माननीय राष्ट्रपति को इस आशय का संदेश भेजा और बतलाया कि संसार के लोग उन संदिग्ध अपराधियों के विषय में पुनर्विचार की माँग कर रहे हैं, मगर राष्ट्रपति ने सारी बातें अनु-सुनी कर दीं। यहाँ तक कि फ्रांस के राष्ट्रपति विंसेन ऑरियल ने भी आइसन हावर को व्यक्तिगत रूप से समझाने की कोशिश की, लेकिन संसार के सभी लोगों की लाखों कोशिशें निरर्थक प्रमाणित हुईं।

अब हम नीचे रोजेनवर्ग-दंपति के उन पत्रों का संक्षिप्त रूप दे रहे हैं, जिन्हें उन दोनों ने एक दूसरे को लिखा था।

गिरफ्तारी, सन् १९५० ई०—

प्रियतम !

आज प्रातः तुम्हारा पत्र मिला। पहले व्यावहारिक मामले को हाथ में लेना ठीक है। हमारा एकाउण्टेण्ट इस सप्ताह आएगा। कल सुबह मैं दूकान जाऊँगी। अपने से संबंधित ग्राहकों तथा संस्थाओं को फोन करके हमारा चुकता कर देने के लिए निवेदन करूँगी। तब हमारी-तुम्हारी भेंट जेल में होगी, मैं भला रविवार तक कैसे रुक सकूँगी? दोनों बच्चे तुम्हें याद करते हैं और बराबर मुझसे पूछते हैं—"मम्मी, पापा कब वापस आएँगे?" तुम्हारे बिना यह सब कुछ कितना सूना और नीरस प्रतीत हो रहा है?

प्रेम-भरी वेदना स्वीकार करो।

सदैव तुम्हारी ही
—एथिल

इस पत्र को लिखने के बाद, पत्र में लिखित कार्यों को समाप्त कर, एथिल ने अपने प्रियतम को बचाने की बहुत कोशिश की, मगर वह भी शीघ्र ही गिरफ्तार कर ली गई। महिला बंदी-गृह से उसने अपने प्रियतम को पत्र लिखा—

माई डीयर जूली !

तुमसे यह छिपा न होगा कि मुझे अब क्या हो गया है। मैं यह पत्र महिला बंदी-गृह से लिख रही हूँ। मेरे प्रियतम ! मैं तुम्हें विश्वास दिलाना

चाहती हूँ कि मैं तनिक भी बेचैन नहीं हूँ—मैं निश्छल हूँ। फिर भी अखबारों ने यह लिखा है कि मैं बार-बार बेसुध होती रही। लेकिन, यह समाचार निराधार और गलत है। मैं रविवार को तुमसे न मिलने के लिए मजबूर हूँ। मेरा हृदय तुम्हारे और बच्चों के लिए चीखना चाह रहा है। मैं चाहती हूँ कि बच्चों के लिए कोई समुचित प्रबंध कर दिया जाय, ताकि उनके सुकुमार मस्तिष्क पर हमारी विपत्तियों का अल्पतम बोझ पड़े।

प्रियतम, ओह! वे चंद घंटे कितने मधुर और सुखदायी थे, जो हमने एक साथ बिताये थे। देखो, अब आठ बजने को है और हमें रात भर के लिए बंद किया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे तुम्हारे पास पत्र लिखने के लिए स्वतंत्रता नहीं है। संभवतः महीने में एक ही पत्र लिख सकूँगी।

किंतु, मेरे आराध्य! सोने से पूर्व प्रत्येक रात्रि को मेरा हृदय तुमसे वार्त्तालाप कर लेता है। किंतु, तुम तो महसूस कर रहे होगे। यह भौतिक दूरी भी कितनी अभेद्य है कि मेरे शब्द इसके पार नहीं जा सकते। ओह, मैं तो फूट-फूटकर रोने लगती हूँ और इस असह्य कष्ट की चोट खाकर तिलमिला उठती हूँ। और, सोचती हूँ कि इस दारुण वेला में तुम भी मेरे-जैसे कष्टों से दंशित हो रहे होगे ....।

सप्रेम तुम्हारी ही

—एथिल

प्रियतम, जूली!

अभी-अभी खबर मिली है कि इस सप्ताह के अंत में वे हमारी डाक रोक लेंगे। इस छोटे-से पत्र पर भी इतनी रोक-थाम!

क्या श्री ब्लांच (हमारे वकील) ने माइकेल की शिक्षा के लिए मेरी सम्मति से तुम्हें अवगत कराया ? मैं समझ नहीं पाती कि हमारी इस दुरवस्था के बीच हमारे असहाय और अबोध बच्चों का क्या हाल होगा ? ब्लांच पर मुझे पूर्ण विश्वास है, वे हमारे बच्चों के लिए अवश्य ही कुछ प्रबंध करेंगे। उन्हीं के सौजन्य के बल पर मैं बच्चों की आवश्यक देख-भाल के लिए नोट तैयार कर रही हूँ और यह लिख रही हूँ कि आज तक उनका लालन-पालन किस प्रकार हुआ है।

क्या तुम विश्वास करते हो कि जेल में अपने बच्चों से हमारी भेंट इतनी आसानी से हो सकेगी ? तो अब जेल की कोठरियों की बत्तियाँ बुझायी जा रही हैं और अब मैं अकेली तुम्हारे हृदय के साथ रहूँगी, जो मेरे लिए सब कुछ है। अच्छा, अभी विदा !

तुम्हारी और तुम्हारी ही,

—एथिल

श्रद्धाओं के मंजुल भाव !

आज मेरा जन्म-दिन आया भी और चला भी गया और जेल के दुर्वह कष्ट के होते हुए भी, तुमने पूर्ववत् सप्रेम मुझे तार और पत्र भेजकर याद किया है। ओह, मैं कितनी भाग्यवान हूँ कि मुझे तुम्हारे निश्छल हृदय का प्रेम पाने का अधिकार मिला है। बस, तुम्हारे प्रेम का सहारा पाकर ही मैं जेल की यातना और अपने आँखों के तारे कोमल बच्चों की जुदाई बर्दाश्त कर रही हूँ। प्रत्येक सुबह में मुझे अपनी उस इच्छा से युद्ध करना पड़ता है, जो बच्चों से मिलने के लिए मुझे तंग करती है। अपने सलोने, प्यारे बच्चों को एक नजर देखने के लिए मेरा हृदय तड़प रहा है।

और फिर मैं सोचती हूँ कि सोमवार के रोज, तुम कोर्ट में कैसे संकल्प और आत्मबल के प्रतीक-जैसे प्रतीत हो रहे थे। तुम्हारे उस दर्शन को पाकर मुझे कितना बल मिलता है, व्यक्त नहीं कर सकती।

बच्चों का पत्र मिला है, माइकेल के अपने हस्ताक्षरों में उसका नाम देख कर इस बंदिनी माता को अपूर्व सुख मिला है। मेरा प्यारा, मेरा दुलारा, वह माइकेल माता-पिता के होते हुए भी आज कितना दुखी हो रहा है!

हृदय से तुम्हारी ही,
—एथिल

निम्नलिखित पत्र जेल की कोठरी से जूलियस ने अपनी पत्नी एथिल को लिखे थे। जरा भरे हृदय से इन पत्रों को पढ़िए—

मेरी मधुमयी एथिल!

वास्तव में तुम्हारे भीतर एक महान नारी की आत्मा है। तुम्हारे इस आंतरिक वैभव का पुनीत स्पर्श मेरा अंतर प्रतिपल करता रहता है। एक अथाह आनंद के वेग से, मेरा प्रत्येक रोम-विंदु आह्लादित हो उठता है और अभी, जबकि मैं अपने हृदय के भावों को कागज के टुकड़ों पर उतारने का प्रयत्न कर रहा हूँ, रह-रहकर मेरी आँखों में आँसू छलछला पड़ते हैं। तुम्हारी महानता के संबंध में तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तुम्हें पाकर, तुम्हें अपनी जीवन-संगिनी बना कर, मैंने अनायास ही महान सफलता प्राप्त कर ली है और न जाने, किन पुण्यों के बल से मेरा जीवन जीने की सार्थकता प्राप्त कर चुका है। आज मुझे पूर्णतः विश्वास हो गया है कि हम वह मानव हैं, जिनका मानवता के इतिहास में महत्व है— असाधारण महत्व है;

क्योंकि हम अन्यायपूर्ण तरीके से की जाने वाली कानूनी परीक्षा के सामने बलपूर्वक खड़े हैं। हमने इस दानवीय दंड को अत्यंत धैर्यपूर्वक सुना है। मैं नहीं सोचता कि ऐसा असीम धैर्य निर्दोष अंतःकरण और निष्पाप जीवन-चर्चा के अलावे किसी अन्य उत्स से स्फुरित हो सकता है। मैं तो सोचता हूँ कि यह भी प्रभु का ही अनुग्रह है कि उसने इस प्रकार हमारी परीक्षा ली और हमें अपने आंतरिक ऐश्वर्य से परिचित कराकर, हमें अपना महिमा-गान करने का अवसर दिया। मैंने माइकेल के पत्र में लिखा है कि हमलोग उससे मिलने के लिए किस प्रकार बेचैन हो रहे हैं। लेकिन, मैंने उसे यह नहीं बतलाया है कि हमें सजा मिली है। मेरी कोठरी के चारों ओर फौलाद के सीकचे लगे हैं। मैं खाता-पीता और पढ़ता हूँ और इस काल-कोठरी के अंदर चार कदम की सीमा में टहल-फिर लेता हूँ।

डार्लिंग ! मैं तो सोचता हूँ कि हमारा पूरा परिवार हमारे साथ है और यह भी विश्वास करता हूँ कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा और लोग यह समझते जायँगे कि हम पूर्णतः निर्दोष हैं, मानवता और सत्य के समर्थक हमें बचाने की भरपूर चेष्टा करेंगे।

मेरा समस्त प्रेम स्वीकार करो।

बस तुम्हारा ही,

—जूली

मेरी रानी एथिल !

आज * ओसिविंग से तुम्हारा आश्चर्यजनक पत्र मिला है। बड़ी उद्विग्नता से तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा कर रहा था और अब तो पूर्णतः

*अमरीका में प्राण-दंड पाए हुए बंदियों का, मृत्यु बंदी-गृह।

विक्षुब्ध हो गया हूँ। मेरे पास जब-जब मेनी (ब्लांच) आता है † सिंग-सिंग में तुम्हारे दैनिक जीवन के कष्टों के आँकड़े बतलाता है। मैं यह सोच कर घबड़ा जाता हूँ कि तुम-जैसी महान और भावुकता की मूर्ति नारी पर इस अत्याचार का कैसा प्रभाव पड़ रहा होगा।

प्रियतमे, तुम्हें सिंगसिंग में भेज कर अमरीका के पुलिस-अधिकारियों ने अपनी नृशंस बर्बरता का परिचय दिया है। परंतु, हमें विश्वास है कि हमें इस प्रकार कष्ट देकर शासक-वर्ग अपने राजनीतिक षड्यंत्र और अत्याचार में सफलता न पा सकेंगे और समय उनके अन्यायपूर्ण मार्ग के प्रति घृणा व्यक्त करेगा।

तुम्हें सिंगसिंग में भेज दिया गया है। इस संबंध में मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि अगर हमारे वकील अपने प्रयत्न से तुम्हें साधारण बंदी-गृह में नहीं ला सके, तो मैं भी अधिकारियों से माँग करूँगा कि वे भी मुझे तुम्हारे समीप सिंगसिंग में ले चलें। और हाँ, इसके लिए मैं कोई प्रयत्न से बाज न आऊँगा, चाहे इसके लिए मुझे जमीन-आकाश एक क्यों न करना पड़े। और मेरे हृदय की रानी ! तुमसे भी मेरी यह प्रार्थना है कि ऐसा करते वक्त तुम मुझे रोकना नहीं।

कई दिनों के बाद, मानों युगों के बाद, तुम्हारा यह चिर प्रतीक्षित पत्र मुझे प्राप्त हुआ है। तुम्हारे प्रत्येक अक्षर व्यक्त करते हैं कि तुम्हारी आत्मा कितना महान और विराट है। तुम्हारे पास अदम्य साहस और सामर्थ्य है, जो मनुष्य को किसी भी अग्नि-परीक्षा में तप्त स्वर्ण की भाँति दमका देता है।

एथिल, तुम नारी के रूप में साक्षात् देवी हो। तुम्हारे धैर्य और शौर्य के समक्ष मैं अपने को बहुत छोटा पाता हूँ। लेकिन, इसी से मुझे प्रेरणा

† अमरीका का कुख्यात बंदी-गृह

भी मिलती है, साहस भी मिलता है और मैं निरंतर हिम्मत के सोपान पर चढ़ता चला जाता हूँ। लगता है, शरीर के दूर रहने पर भी तुम्हारा आत्म-बल मुझे प्रति क्षण महान बल प्रदान करता होता है।

अच्छा, अब विदा हो रहा हूँ।

सदैव तुम्हारा, तुम्हारा ही,

—जूली

अमरीकी सत्ता के विरुद्ध जनता की घृणा क्षण-प्रति क्षण उग्र और तीव्र होती गई। अटलांटिक महासागर को पार कर यह घृणा आधी इंगलैंड होती हुई, आधे यूरोप तक पहुँच गई। फिर वहाँ से घृणा और जन-विद्रोह की भावना इतनी व्यापक हुई कि वह प्रशांत सागर की लहरों को चीरती हुई, टोकियो के कोने-कोने में फैल गई। मृत्यु-दंड पर पुनर्विचार करने के लिए प्रायः सभी वर्ग के लोगों ने अमरीकी सरकार और जनता से आग्रह किया। इन पंक्तियों के लेखक को तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेसिडेण्ट आइसन हावर को राजनीतिक अत्याचारियों द्वारा ऐसी बातें (रोजेनवर्ग-दंपति के विरुद्ध) समझायी गई होंगी कि वे क्षमा-दान नहीं देने को विवश होंगे; क्योंकि व्यक्तिगत तौर पर श्री हावर अत्यंत ही संवेदनशील और भावुक व्यक्ति हैं। जो भी हो, राजनीति के दलदल से उन्हें भी अपना पैर निकालना मुश्किल हो गया, राजनीतकि स्वार्थपरता के वशीभूत होकर उन्होंने ने भी न्याय का गला घोंटने में शासक-वर्ग का हाथ बटाया। उचित था कि आइसन हावर अपने विशेषाधिकार से मानवता को बचा लेते।

मेरी अच्छी एथिल !

यहाँ के बंदी-गृह, वेस्ट सेंट में मेरे जीवित रहने के मात्र तीन आधार हैं।

(१) तुम्हारे पत्र (२) मेनी की भेंट (३) साथ ही अपने घर वालों की मुलाकातें। खास कर तुम्हारे पत्र तो मेरे मन-प्राण के अंग बन गए हैं।

मेरे घरवाले अधिकारियों की आज्ञा की बड़ी उद्विग्नता से प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे तुम्हें देख सकें। प्रतीत होता है कि इस छोटे-से; किंतु मानवीय अधिकार के लिए मुझे लड़ना पड़ेगा।

तुम्हारा ही,

—जूली

महानता की मूर्ति।

आज बच्चों की करुण रुलायी मेरे हृदय को कुरेद रही है। जब मैं उनसे मिलने के लिए 'वीजिटर्स रूम' में गया, तब वह पाजी रॉबी (छोटा लड़का) मुझे छकाने के लिए दरवाजे के पीछे छिप गया था। सोचो, उसे देख कर मेरा हृदय कितना भर आया होगा। मैंने उस पाजी को पकड़ लिया और कस कर अपनी छाती में भींच लिया। वेदना और प्रेम से मेरी आँखें छलछला आईं। वेदना के आँसू प्रवाहित होने लगे। ओह, माइकेल ने उस वक्त कैसा प्रश्न किया था। मेरा हृदय भर गया। माइकेल ने पूछा, "डैडी, आपकी आवाज क्यों बदल गई है?"

ओह, मैं अपने कलेजे के टुकड़े को किस प्रकार सांत्वना देता! मैंने रॉबी को बहुत समझाने की कोशिश की। बहुतेरा फुसलाया-समझाया। मगर, वह अबोध और फूल से भी कोमल रॉबी मुझसे बार-बार पूछता रहा, "डैडी, ह्वाई यू नौट कम होम?"

तुमसे क्या बतलाऊँ एथिल! इस मौके पर माइकेल ने ऐसी दर्दनाक बात कही कि उसकी ध्वनि हमेशा कानों में गूँज रही है। मेरा हृदय पवित्र

हो गया। तुम जानना चाहोगी कि माइकेल ने कौन-सी बात कही। सुनो, उसने कहा था, "डैडी, यदि आप दोनों की जगह पर मैं यहाँ जेलखाने में होता, तो कितना अच्छा होता! पापा, तुम धीरज रखो। मैं बहुत जल्द वकालत पढ़ करके, वकील बनूँगा और फिर बहस करके तुम्हें और मम्मी को छुड़ा लूँगा।"

एथिल, तुम सोच सकती हो कि उस बालक के मुख से ऐसी बातें सुनकर मैं अपने आँसुओं को भला कैसे रोक पाता? देखो, यह तो स्पष्ट है कि बच्चे हमारे बिना रह नहीं सकते। लेकिन, तुम तो जानती हो कि हमारी जुदाई अब अधिक दिनों की नहीं है। माइकेल ने बतलाया है कि उसकी दादी उसके साथ रहने के लिए आ रही है।

रानी! जब मैं बच्चों से मिल कर अलग हुआ, तब ऐसा लगा कि मैं अपने कलेजे के टुकड़े को निकाल कर स्वयं अपने कलेजे से अलग कर रहा हूँ। तुम भावुक हो न, इसीलिए तुमसे पैदा हुए बच्चे भी अत्यंत भावुक हैं।

सप्रेम तुम्हारा,

—जूली

एथिल के पत्र जूली के नाम—

मेरे प्यारे जूली!

मैं नहीं समझती, संसार में किसी नारी को मुझ-जैसी पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, जिसे तुम जैसा फरिश्ता पति मिला है।

कल मेनी ने मुझे कुछ फोटो दिये हैं। इनमें माइकेल का भी एक स्कूल का चित्र है। छात्रों में वह सबसे पीछे खड़ा है। उसकी चमकदार और

भावभरित आँखें देख कर हृदय बैठ गया। यदि मेनी हमारे पास माइकेल को लेकर आया होता, तो उसके मस्तक को चूम लेती। ऐसी जुदाई में तो मैं मर्माहत सिंहनी की भाँति पागल हो उठी। मेरा नन्हा, प्यारा, दुलारा बलपूर्वक मुझसे छीन लिया गया है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि ईसा की दुहाई देने वाले इन क्रूसधारियों ने ऐसा जघन्य न्याय कैसे कर दिया? मेरा हृदय अमरीका की समवयस्क बहनों से पूछना चाहता है कि तुम्हारे अपने पति और बच्चे कब तक सुरक्षित रह सकेंगे, अगर इस प्रकार तुम अपने मौन द्वारा ऐसे कुकृत्य बर्दाश्त करती रहोगी?

प्राणों की शत-शत वंदना सहित

—एथिल

जूली के पत्र एथिल के नाम—

प्राणाधिके!

अब हमारा शतरंज का खेल समाप्त हो चुका है; क्योंकि साथियों को उनके मुकदमें के आवश्यक कागजात मिल गए हैं और वे मनोयोगपूर्वक उन कागजातों का अध्ययन करने में लग गए हैं। * लीना का पत्र आया है कि माइकेल ने पड़ोस के कई लड़कों से दोस्ती कर ली है और उनसे बेचारा अपना मन लगाता है। ठीक है, क्या करे लड़का?

जानती हो, इस वक्त मैं क्या कर रहा हूँ? तुम जरूर जानती होगी; क्योंकि मैं जानता हूँ, तुम्हारी आत्मा मुझसे दूर नहीं है। इस वक्त चुपचाप बैठा हुआ मैं सिगरेट पी रहा हूँ और उन संध्याओं की याद कर रहा हूँ, जो हमने रेकार्ड सुनते बितायी थीं। प्रिये! ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हमने

* जूलियस रोजेनवर्ग की बहन।

अपने जीवन में जो कुछ किया, उसका अब नित्य नया अर्थ बनता जा रहा है। तुम तो जानती हो कि तुम्हें और बच्चों को पाकर मैं कितना सुखी और सौभाग्यशाली हूँ। जनता के प्रति अपनी श्रद्धा और विश्वास को हमने नहीं खोया है और विश्वास है कि आम जनता के बीच हमारे निरपराध होने की बात प्रकट होने जा रही है। हमें विश्वास है कि हमारे पक्ष में जो जनता का असंख्य समर्थन है, उसके बल पर हम शीघ्र ही रिहा कर दिए जायँगे।

तुम्हारा ही
—जूली

प्रिये !

मुझे सब कुछ याद आ रहा है। वह अविस्मरणीय घटना चित्र की भाँति मेरी आँखों के सामने घूम रही है। शायद एक युग पहले। हाँ, हाँ, १६३६ में! भाव-जगत की एक मधुरतम सुंदरी से मैं मिला था और वह परम सुंदरी वही 'एथिल' है, बाद में जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था। ओह, उस सुखद घटना को भला मैं कैसे भूल सकता हूँ?

और तब? हम दोनों ने स्वर्गीय सुख के साथ पूरे बारह वर्ष बिता दिये। दो जल-स्रोतों की भाँति एकाकार रह कर दुःख और संताप से भी दोनों ने सुख और आनंद का मधु— अथाह मधु— संचित किया और ईमानदार, उपयोगी नागरिक बन कर मानव-प्रगति के पुण्य-प्रवाह में अपना तुच्छ सहयोग दिया। परंतु, अब तो भाग्य का फैसला ही हमारे लिए क्रूर व्यंग्य प्रतीत हो रहा है— शायद हमारी उपयोगिता श्रेय के कोष में अवशेष नहीं रही। हमारे शरीर और आत्मा की पुण्य निधियाँ शायद निःशेष हो

गई हैं। लेकिन, क्या इसका अभिप्राय यह है कि हम उत्कर्ष के तकाजों की अवहेलना कर दें— हमारे अंत और आज के मध्य में कितनी साँसें अभी शेष हैं। क्यों न हम शेष समय मानव के प्रति सद्भावना और शुभ कामनाओं में ही बितावें।

हमेशा-हमेशा तुम्हारा
—जूली

मेरी एथिल !

अभी मैं मेज पर बैठा तुम्हारे प्यारे चेहरे की ओर देख रहा हूँ, जो बच्चों के चित्र के साथ दीवार पर टँगा है।

इधर जबसे मैंने 'गाजियन' के लेख पढ़े हैं, मैं उन्हें बारम्बार पढ़ता रहा हूँ। देखो, अंत में संसार की जनता के सामने सचाई जाहिर हो रही है। संसार के ख्यतिप्राप्त और भले लोग हमारी सहायता और सुरक्षा के लिए आगे बढ़ रहे हैं। 'संपादक के नाम पत्र' लिखे गए पत्रों को पढ़ कर जनता के प्रति हृदय कृतज्ञता से भर उठता है। जनता का अनुग्रह ही हमारा संबल है।............

सप्रेम तुम्हारा
—जूली

जूली के नाम लिखे गए एथिल के पत्र—

यारे जूली !

मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि मेरे मन में कभी ऐसी भूख और कटु अतृप्ति जाग उठेगी। मैं मृत्यु को मिट्टी में रौंद देने का साहस लिये तैयार खड़ी हूँ। हाँ, यह सत्य है कि मृत्यु की धमकी ने मेरे मानस-पट

में एक प्रकार की भयंकर आग लगा दी है और मैं साहसपूर्वक उससे लड़ने को तैयार हूँ। मेरे मन में विजय और जीवन के प्रति नए प्रयास जाग उठे हैं।

तुम्हारी ही,
—एथिल

जूली का पत्र एथिल के नाम—

मेरी सलोनी एथिल !

मैं इस बात के लिए उत्सुक हूँ कि अगली मुलाकात में माइकेल अपने दोस्तों के विषय में क्या-क्या कहेगा। मैं सोचता हूँ कि अपने वकील से सहायता लेकर हम दोनों अपने बच्चों से साथ-साथ मिलें। 'गार्जियन' में पत्रों की भरमार है। हमने अपनी पेशी के समय, उससे पहले और उसके बाद जो कुछ कहा, ठीक वैसा ही है। वास्तव में असली और अंतिम न्यायालय, न्यायाधीश और सत्ता तो वह कोटि-कोटि अमरीकी जनता है। वही हमारे अधिकार, मुक्ति और जीवन की संरक्षिका है।

प्रिये, भगवान को धन्यवाद दो कि उसने हमें मजबूत तत्त्वों से गढ़ा है।

तुम्हारी ही आत्मा का प्रतिरूप
—जूली

प्यारी एथिल !

ज्योंही मैंने इस सप्ताह का 'गार्जियन' पढ़ा, पाठकों के पत्रों में उपयुक्त विशेषज्ञों की राय पढ़ कर हृदय उपकार के बोझ से दब गया। वास्तविकता तो यह है कि हम भी इन्हीं करोड़ों अपरिचित व्यक्तियों में से हैं, जिनकी

आत्मीयता और सहानुभूति हमारे लिए मचल उठी है। देखो, आज परमेश्वर कितने हृदयों से प्रकट होकर, हमारे सत्य की प्रशंसा कर रहा है !

इधर एक सोलह-पेजी पैम्फलेट निकला है। भविष्य में तो हमें अधिकाधिक सहयोग की आशा है। इससे मेरे विश्वास को बल मिल रहा है कि हम इस अग्नि-परीक्षा में अवश्य सफल होंगे।

आज 'शांति-संधि-दिवस' है। आज के दिन प्रत्येक व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि युद्ध की कल्पना या युद्ध का अंत प्राणिमात्र के लिए हानिकारक है— मानवता उससे चीख उठती है। विश्व-शांति के प्रश्न को हल करने का दायित्व प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऊपर लेना चाहिए। देखो, घटनाओं का यह कैसा षड्यंत्र है कि हम दोनों भी संसार-शतरंज के भौतिक मुहरें बन गए हैं !

तुम्हारे हृदय का स्वरूप
—जूली

एथिल का पत्र जूली के नाम—

२६ फरवरी, १९५२

प्रियतम,

कल रात को लगभग दस बजे मैंने 'सर्किट कोर्ट ऑफ अपील्स' द्वारा हमारी अपील रद्द होने की खबर सुनी।

इस समय, जबकि विवरण अज्ञात और अप्राप्य है, विशेष कहना कठिन है। मैं अपने दुःख और भय का वर्णन नहीं कर सकती कि हमारी सरकार किस उतावलेपन के साथ हमें प्राण-दंड देने को तुली हुई है। मेरा हृदय बच्चों के लिए व्याकुल और अभिशप्त है। दुर्भाग्य से वे इतने सयाने हैं

कि वे इस अप्रिय घटना का अर्थ समझ लेंगे। यह ठीक है कि मैं अपने मन को समझाना चाहती हूँ, समझाती रहूँगी, लेकिन मेरी आँखों के सामने वे चित्र घूम रहे हैं, जिनमें मेरे बच्चे भयानक पीड़ा से संतप्त हैं। यही सोचती हूँ कि हमारे मृत्यु-दंड का उन पर क्या असर होगा?

काश, भगवान मुझे इतनी शक्ति देता कि मैं अपने साथ तुम्हें भी सांत्वना दे पाती!

तुम्हारी ही,
—एथिल

रोजेनवर्ग-दंपति को ज्ञात हो गया कि उनकी अपील रद्द कर दी गई है। एथिल का पत्र जूली ने पढ़ा और उत्तर दिया—

२८ फरवरी, १९५२

प्रियतमे!

मेरे हृदय पर इस बात का भयंकर प्रभाव है कि कितनी जल्दीबाजी में हमें सजा दी गई है! आशा है, कोर्ट का किरानी न्यायाधीश फ्रैन्क की सम्मति की प्रतिलिपि शीघ्र ही भेजेगा।

न्यायाधीश ने जो कुछ कहा है, मैं चाहूँगा कि उसे ध्यानपूर्वक पढ़ूँ। और उन सारे तथाकथित स्थलों को बतला दूँगा, जहाँ-जहाँ न्याय के मनुष्य-रूपी देवताओं ने सत्य को दबाने की चेष्टा की है। मैं बतला दूँगा कि कहाँ-कहाँ उन्होंने प्रमाण छोड़ दिए हैं, नकली गवाहियाँ लिखी हैं, ऐसी बातें भी जोड़ दी हैं, जो पहले हमारे किसी रेकार्ड में नहीं थीं। इनलोगों ने कई जगहों पर नकली गवाह तैयार किये हैं और उनसे काम न बनने पर उन्हें अलग कर दिया है।

मैं उस धोखे और बेईमानी को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, जिसके द्वारा, 'लिबरल' कहलानेवाले एक आदमी ने, हमारे लिए यह राजनीतिक कुचक्र रचा है। हमें कर्त्तव्यच्युत और बेईमान बनाने के लिए इन्होंने सभी प्रकार के जाल रचे हैं और सत्य, न्याय और धर्म को ताख पर रख दिया है। चूँके अब हम अपने अंतिम निर्णय के समीप आ गए हैं और सच पूछो, तो इस गति से हम अपनी मृत्यु के भी सन्निकट हैं। मैं तो स्पष्ट देख रहा हूँ कि मेरे जीवन में तुम्हारा क्या महत्व रहा है। मेरे अपने रक्त-मांस में भी तुम अधिक मूल्यवान रही हो।

सदैव तुम्हारा

—जूली

एथिल का पत्र जूली के नाम—

मेरे प्राण !

मैं निरंतर आत्मवर्तिनी हो रही हूँ। मुझ पर चारों तरफ से दबाव डाले जा रहे हैं। न-जानें, सरकार मुझसे क्या कराना चाहती है। मैं अत्यंत आशंकित हूँ। लेकिन, उन्हें मालूम होना चाहिए कि किसी भी प्रकार की वक्रता अथवा शक्ति की जोर-जबरदस्ती हमें अपने सत्य-मार्ग से विचलित नहीं कर सकती।

तुम्हारी याद में मुझे इतनी दृढ़ता मिलती है कि मेरा सारा दुःख दूर हो जाता है।

समर्पिता

—एथिल

जूली का पत्र अपने वकील मेनी (ब्लांच) के नाम—

प्रिय मेनी !

जीवन के पिछले दुखों, अनुभवों और ज्ञान ने मुझे काफी 'प्रबुद्ध व्यक्ति' बना दिया है। किंतु क्या कारण है कि 'उन्होंने' जीने के लिए हमें केवल तीन सप्ताह का समय दिया है? ......

कई प्रकार से वे मुझे कहलवा रहे हैं—" तुम चाहो, तो अपनी पत्नी की जिंदगी बचा सकते हो। सौदा करो। वह करो, जो सरकार चाहती है। तो क्या इनका प्रलोभन पाकर मैं उन सचाइयों के मुँह पर थप्पड़ मार दूँ, जिन्हें मैंने देखा है? जीवन के मूल्यवान वर्ष देकर जिन्हें मैंने खरीदा है? क्या मैं वे सिद्धांत छोड़ दूँ, जो मेरे रक्त-प्रवाह को धकेलते हैं? यह तो मुझसे कदापि न होगा। ....

प्यारे मेनी! अब तो तुमने जान लिया कि निरपराध बने रहने के लिए भी इस संसार में कितनी हिम्मत की जरूरत है—यह तो विडंबना है न! यह संसार अपने बासिंदों को निरपराध मरने देना भी देखना नहीं चाहता।

हमें तो असंख्य कोटि-कोटि जनता पर श्रद्धा और विश्वास है कि वह हमारे मामले को, आँखें खोल कर देखेगी और प्रयत्न करेगी कि यही हमारा अंतिम क्रिसमस नहीं है।................

तुम्हारा

—जूली

एथिल का पत्र मेनी के नाम—

गत सप्ताह से एक और गलत और गंदी बात बढ़ रही है। यह सूचित किया जा रहा है कि 'मानवीय दृष्टि' की दया से मैं मुक्त हो सकती हूँ।

बच्चों का शैशव देखते हुए और मेरे एक स्त्री होने के कारण, वे मुझे छोड़ सकते हैं और प्राण-दंड की मेरी सजा क्षमा कर दे सकते हैं। लेकिन, शर्त्त क्या है, जानते हो? मैं अपने प्राणों से प्रिय पति के पथ पर न चलूँ और सरकारी गवाह बन जाऊँ। समझा तुमने, अब मेरे पति के जीवन के बदले लोग मेरी आत्मा का सौदा करना चाह रहे हैं। क्या वे ऐसा सोचते हैं कि मैं अपने पति के पथ से भाग जाऊँगी और पीछे मुड़कर देखूँगी भी नहीं?

यह सारी बातें सुन-सुनकर मेरे मन में क्रोध और आक्रोश उठता है और घृणा से मेरा हृदय उबल-उबल पड़ता है। क्या वे चाहते हैं कि मैं अपने ही पति की पीठ में छुरा भोंकूँ, मैं ऐसा कुकृत्य करूँ, जिसके कलंक को सदियों तक नारी-जाति नहीं धो सकेगी? क्या मैं जीवन-रहित जीवन व्यतीत करूँ? मरती हुई भी जीवित रहूँ? क्या कोई स्त्री इस प्रकार अपनी आत्मा का हनन कर सकेगी? मैं तो अपने शत्रुओं के संमुख यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि मेरा स्थान मेरे पति की बगल में है। अपने पति के सिद्धांतों और आदर्शों के लिए मैं हत्यारों की तलवार भी सहर्ष झेलूँगी!

मेरे पति सर्वथा निर्दोष हैं और संसार की कोई भी शक्ति हमें जीवित या मृत, जुदा नहीं कर सकेगी।

सस्नेह तुम्हारी

—एथिल

संसार के शीर्षस्थानीय विचारकों, साहित्यकारों और महापुरुषों की सिफारिशों से सुसज्ज 'क्षमा-दान' की प्रार्थना भी राष्ट्रपति आइसन हावर ने तत्क्षण ही अस्वीकृत कर दी। नीचे मैं उस पत्र का संक्षिप्त रूप दे रहा हूँ, जिसे राष्ट्रपति के

अवज्ञापूर्ण निर्णय से क्षुब्ध होकर जुलियस रोजेनवर्ग ने अपने वकील मेनो (ब्लांच) को लिखा था—

प्रिय मेनी !

आज मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि राष्ट्रपति आइसन हावर मुझे बाइबिल के उपदेश देते हैं।........कैसी दिल्लगी है ! मधुर एवं ज्ञान के शब्दों-द्वारा मनुष्य अपने बर्बर कर्मों पर परदा डालने का हास्यास्पद प्रयत्न करता है। और, देखता हूँ कि आज अपने कर्मों से हमारी सरकार भी 'हमारी मौत' की सजा के लिए जिम्मेवार हत्यारों के दल में शामिल हो गई है।

मुझे अत्यंत विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि राष्ट्रपति ने हमारी क्षमा के लिए प्रार्थना-पत्र को पढ़ा ही नहीं। सभी समाचार-पत्रों ने लिखा है कि शाम को साढ़े चार बजे राष्ट्रपति के पास हमारा आवेदन-पत्र आया और पाँच बजे उसे लौटा दिया गया और पहले से तैयार बयान सुना दिया गया। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि उतना लंबा आवेदन-पत्र राष्ट्रपति ने तीस मिनट में कैसे पढ़ लिया !

प्रिय मेनी, आज संसार के सामने प्रमाणित हो जाएगा कि राष्ट्रपति आइसन हावर ने न तो कभी कागजात पढ़े और न हमारा आवेदन-पत्र ही देखा ! लेकिन सोचता हूँ कि इस अत्याचार के हम ही प्रथम शिकार नहीं हैं, बल्कि हमारी जाति के साठ लाख प्राणी (यहूदी) और लाखों अन्य व्यक्ति भूतकाल में फासिज़्म के शिकार बने हैं ! जिन अपराधियों ने ये हत्याएँ की थीं, वे प्रतिदिन बंदी-गृहों से छोड़े जा रहे हैं। आज पुनः सर्वसत्ताधारी जनता के नाम पर, सरकार हमारे देश के पवित्र नाम पर, रोजेनवर्ग के नाम का धब्बा डालना चाहती है।

सदैव तुम्हारा

—जूली

राष्ट्रपति के इस निर्मम निर्णय से एक नारी का हृदय, एक पत्नी का हृदय और एक माता का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उसने बहुत साहस बटोर कर, निम्नलिखित पत्र राष्ट्रपति आइसन हावर को लिखा—

आदरणीय श्री राष्ट्रपति !

पिछले दो वर्षों में, जो मैंने सिंगसिंग के 'मृत्यु-गृह' में बिताये हैं, कई बार इच्छा हुई कि सम्माननीय राष्ट्रपति को एक निजी पत्र लिखूँ। लेकिन, बार-बार मन में एक झिझक होती रही, जो एक साधारण नागरिक के लिए स्वभाविक है। इतने बड़े आदमी के पास कैसे पत्र लिखा जाय !

मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप हमारे मृत्यु-दंड के विषय में पुनः कुछ सोचें-विचारें। आपकी अदालत का यह निर्णय क्या शक्ति और अन्याय के अस्वाभाविक गठ-बंधन को प्रदर्शित नहीं करता है ?...............

श्री ओटिस की मुक्ति ने मेरे बालकों के मन को इस आशा से भर दिया है कि हम भी मुक्त हो जायँगे.......उन बालकों के साथ मैं भी 'करुणा' की नींव पर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप न्याय की सीमित धारा से बाहर आइए और महाशयता के समुद्र को ग्रहण कीजिए....। मैं सोचती हूँ कि मैं राष्ट्रपति से नहीं, वरन, एक प्रेमालु दादा, भावुक चित्रकार और शांति के लिए लड़े गए पिछले महायुद्ध-विजेता एक महापुरुष से प्रार्थना कर रही हूँ.... यदि महापुरुष की महानता कार्यों में न प्रकट हो, तो फिर उसका मूल्य ही क्या ?.........आप अपनी नेक पत्नी से सलाह लीजिए। सुचेता राजपुरुषों से परामर्श कीजिए। अपने एक मात्र बेटे की माँ से पूछिए, उसका हृदय मेरे

हृदय को अधिक जानता है और उस पीड़ा को समझता है, जो अपने बच्चों से अलग रहने से एक माँ के मन में उठा करती है।

सादर

—एथिल रोजेनबर्ग

जूली का पत्र अपने वकील मेनी के नाम—

प्रिय मेनी!

मैंने अपना अंतिम इच्छा-पत्र और मृत्यु-लेख तैयार कर दिया है। इसलिए कि हमारे मरणोपरांत बच्चों के भरण-पोषण और संरक्षण में कोई सवाल न खड़ा हो। मेरे बाद बच्चों का पूर्ण दायित्व तुम्हारा है। वैसे इसे दुहराने की कोई आवश्यकता भी न थी; क्योंकि तुमने वह दायित्व पहले ही सँभाल लिया है। पर, मेरा कातर वात्सल्य उस इच्छा को प्रार्थना के रूप में पुनः दुहरा रहा है। एथिल भी इस प्रार्थना में पूर्णतः सहमत है और प्रमाण के लिए अपने हस्ताक्षर के द्वारा वह भी इसे पुष्ट किये दे रही है।

तुम तो जानते हो, हमारे बच्चे हमारी आँखों के तारे हैं, हमारे जीवंत गौरव और हमारी अमूल्य निधि हैं। तुम उन्हें अपने संपूर्ण हृदय से प्यार करना और उन्हें स्वस्थ नागरिक बनाना। यह तो तुम यों भी करते, लेकिन उनके पितृत्व का गौरव मुझे अपनी इच्छा को तुमसे स्पष्टतः कह देने के लिए बाध्य करता है; क्योंकि तुम मेरे अभिन्न मित्र और स्नेह-प्रवण भाई हो। मैं अपने बच्चों को प्राणों से बढ़ कर प्यार करता हूँ।

यों 'विदा' कहने की मैं खास जरूरत नहीं समझता; क्योंकि मेरा विश्वास है, सद्भावनापूर्वक किये गए सुकृत सनातन होते हैं। लेकिन,

इतना तो कहूँगा ही कि आज जीवन के प्रति बहुत अधिक मोह का अनुभव कर रहा हूँ; क्योंकि भविष्य की उज्ज्वल अपेक्षाएँ मेरे सामने नाच उठती हैं। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इस उज्ज्वल भविष्य की दिशा में जितना संभव था, हम दोनों (पति-पत्नी) ने प्रयत्न किया है और मेरी दृढ़ मान्यता है कि मेरे बच्चे और करोड़ों शांतिकामी नर-नारी इससे बल पाएँगे, लाभान्वित होंगे।

अपनी जीवन-संगिनी के स्नेह, सौजन्य और उसकी भक्ति-गर्वित भव्यता को प्रकट करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं। इतना ही कहूँगा कि उसने मेरे जीवन को पूर्ण और समृद्ध बनाया है।

मेरी वृद्धा माँने हमारे लिए कितना किया है, उसके बारे में नहीं कहा जा सकता—उसके प्रेम में मैंने अनंतता का अनुभव किया है। मेरे भाई-बहनों ने शुरू से ही हमें हर तरह से सहायता दी है, हमारे लिए सब कुछ किया है। और········तुम ? तुम्हारे बारे में क्या कहूँ ? तुम्हारे और मेरे बीच का बंधुत्व-डोर हमारे जीवन-युग में एक महान संबल रहा है। अतः, मेरा हार्दिक अभिनंदन और स्नेहालिंगन स्वीकार करना। 'हम निरपराध हैं' इस सत्य को कभी धूमिल न होने देना।

शांति, जीविका और सौंदर्य के लिए हम अपने विनम्र गौरव, अदम्य धैर्य, अक्षुण्ण विश्वास एवं उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक आशा के साथ 'दंड-विधाता' की तलवार की छाया के नीचे अचल हैं।

तुम्हारा ही,

—जूली

द्रष्टव्य :— एथिल सबको सूचित करना चाहती है कि अमरीकी ताना-शाही के हम प्रथम शिकार हैं।

—एथिल और जूली रोजेनवर्ग

और यह अंतिम पत्र है, जिसे रोजेनवर्ग-दंपति ने अपने प्यारे बच्चों के नाम ता० १६ जून, १६५३ को लिखा था—

१६ जून, १६५३

प्रिय मेनी,

निम्नलिखित पत्र हमारे बच्चों के लिए है—

हमारे प्यारे बच्चो !

आज हम तुम्हारी जुदाई बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहे हैं। पर, अब हमारा मिलन संभव नहीं—कभी भी नहीं। जीवन से हमने जो कुछ सीखा है; सब तुमलोगों को बता देना चाहते थे। पर, दुर्भाग्यवश हम कुछ शब्द ही लिख पाएँगे—शेष सीख तुम्हारा जीवन स्वयं तुम्हें देगा, जैसा कि हमें दिया है।

हम जानते हैं कि हमारे लिए तुम्हें बहुत शोक होगा; लेकिन तुम्हारे इस शोक में कोटि-कोटि लोग शामिल हैं। और यही हमें आश्वासन है; तुम्हारे लिए भी होना चाहिए। हमारे उदाहरण लेकर तुमलोग यह विश्वास हृदय में सँजोये रखोगे कि जीवन जीने योग्य होना चाहिए। तसल्ली रखो; क्योंकि अब भी, जबकि हमारा आखिरी वक्त नजदीक आता जा रहा है, हमारे इस अक्षुण्ण विश्वास में तनिक भी कमी नहीं आई है कि हमारी यह विजय और दंड-विधाताओं की करारी हार है। तुम्हें जीवन से भी यही

सीख मिलेगी कि बुराइयों के बीच में अच्छाई बढ़ नहीं सकती। स्वतंत्रता, प्रामाणिकता आदि वे सारी चीजें, जो जीवन को जीने योग्य बनाती हैं, कभी-कभी बड़ी महँगी कीमत में खरीदी जाती हैं। इसलिए तसल्ली रखो कि लोगों के सामने हम अपनी सचाई के साथ जी रहे हैं और उन्होंने हमें अंतरतम का विश्वास दिया है, हमारे सद्‌देश्य का हार्दिक समादर किया है।

तसल्ली रखो; क्योंकि मानवीय सम्मति अभी उस विकास-बिंदु तक नहीं पहुँची है, जहाँ जीवन की रक्षा के लिए जीवन का बलिदान नहीं देना पड़े। हमें भी इसका पूर्ण विश्वास है कि हमारी साधना की दिशा में हमारे अन्य भाई-बंधु सोत्साह बढ़ते जायँगे और तब तक विरत न होंगे, जब तक अभिप्सित सिद्धि न मिल जाय।

हमारी हार्दिक इच्छा थी कि तुम्हारे साथ गौरवान्वित जीवन जीने का अवसर मिलता""""पर वह नहीं होने का। यह अफसोस है! अस्तु, हम दोनों का (माता-पिता का) संपूर्ण प्यार! हमेशा स्मरण रखो, हम निर्दोष थे और अपनी आत्मा को हमने कभी कलुषित नहीं किया।

आशीर्वाद और चुंबन के साथ

तुम्हारे माँ-बाप

—एथिल, जूली

द्रष्टव्य :—मेनी को—

दसों धर्मोपदेश, (बाइबिल के दस कमांडमेंट्स) धार्मिक पदक और सिकड़ी तथा मेरी विवाह की अँगूठी—मैं चाहता हूँ, मेरे बच्चों को हमारे अमर प्रेम की निशानी के रूप में दे देना।

तुम्हारा,

—जूली

इस प्रकार बर्बरता ने अपनी मंजिल तय कर ली, मानवता थक गई। १६ जून को रोजेनवर्ग-दंपति को मृत्यु-दंड दे दिया गया और संसार की कोटि-कोटि जनता के हृदय से आवाज निकली—"रोजेनवर्ग-दंपति को नहीं, बल्कि मानवता को मृत्यु-दंड मिल गया। इंसानियत का चिराग बुझा दिया गया।"